अपनी बात

राजस्थान की हिन्दी कविता के सम्बन्ध मे मेरी यह धारणा रही है कि साहित्य के हर युग मे राजस्थान के कृतिकारो का महत्वपूर्ण योग रहा है। हिन्दी के आदिकालीन साहित्य के सृजन का गौरव, राजस्थान को ही रहा है। अपभ्रंश का अधिकाश और वीर गाथात्मक प्रायः प्रमुख रासो-साहित्य इसी प्रदेश मे रचा गया। मध्ययुग मे राजस्थान के सामंती परिवेश मे धर्मसाधना, जीवन का अग बन चुकी थी। राजस्थान मे वल्लभ सम्प्रदाय, निंबार्क सम्प्रदाय, दादू सम्प्रदाय, राम सनेही सम्प्रदाय आदि के अखिल भारतीय केन्द्र इस बात के सूचक हैं कि धर्मसाधना को यहाँ कितना महत्वपूर्ण स्थान मिला है। सगुण भक्ति की राम-कृष्ण काव्य परंपरा मे जिन कृतिकारों की चर्चा होती रही है उनमें से मीरा, नरहरिदास, कृष्णदास पयहारी, नागरीदास, नाभादास, व्रजनिधि, चाचा हितवृंदावनदास तथा निर्गुण काव्य परम्परा के दादू, दरियावजी, पीपा, सहजोबाई, दयाबाई, गरीबदास, रज्जब, सुन्दरदास आदि संत कवियो की वाणी इसी भू-भाग पर मुखरित हुई थी। इसी प्रकार रीतिकाल में भी राजस्थान ने हिन्दी को समृद्ध बनाने में ऐतिहासिक योग दिया है। डॉ. नगेन्द्र के मतानुसार हिन्दी रीतिकाव्य का सृजन मुख्यत राजस्थान और बुंदेलखंड मे ही हुआ। हिन्दी रीतिकाल की चर्चा के संदर्भ मे जिन आचार्यों, रस सिद्धश्वरों, नीतिज्ञों एवं भाषाविदों की चर्चा की जाती है उनमे मे अधिकांश की सृजन प्रक्रिया का केन्द्र राजस्थान रहा है। जो राजस्थान के नहीं थे वे भी आश्रय की खोज में यहाँ आये और अपने श्रेष्ठ कृतित्व से हिन्दी का शृंगार किया। इस सदर्भ में राजा जसवंतसिंह, बिहारी, वृन्द, कुलपति, सोमनाथ, सूरति मिश्र, सूदन, पद्माकर, मतिराम, मान कवि, जोधराज, नागरीदास, बनीठनी जी आदि का नाम उल्लेखनीय है।

आदिकाल से लेकर रीतिकाल के उत्तरार्द्ध तक राजस्थान मे जहाँ एक ओर श्रेष्ठ कलाकृतियो का सृजन हुआ वहाँ यह तथ्य भी ध्यान देने योग्य है कि राजस्थान के अनेक नरेशों और कवियों ने विदेशी दासता से मुक्ति की छटपटाहट को भी वाणी दी। सामान्यतः यह धारणा रही है कि राष्ट्रीय चेतना के विकास की दृष्टि से आधुनिक युग का आरम्भ भारतेन्दु से होता है, लेकिन 19वीं शती के

डण्डियों और प्रशस्त राजमार्गों से आगे बढ़ा है जिन पर हिन्दी कविता, कभी रुकती, कभी ठिठकती, कभी मचलती और कभी द्रुतगति से दौड़ती चली है। प्रवृत्तियों की दृष्टि से राजस्थान की हिन्दी कविता को सामान्य हिन्दी काव्य की पृष्ठभूमि से अलग करके देखना उचित नहीं है। उन्हीं परिस्थितियों और परम्पराओं का चित्रण-पोषण राजस्थान के हिन्दी काव्य में हुआ है जो भारतीय स्तर पर हिन्दी काव्य को मूर्त रूप दे रही थी। वस्तुतः राजस्थान का हिन्दी काव्य अपनी सम्पूर्ण चेतना और अनुभूति-अभिव्यक्ति के लिये हिन्दी की उन काव्य-प्रवृत्तियों से प्रभावित है जो हिन्दी काव्य को गढ़ रही थीं।

राजस्थान की हिन्दी कविता से सम्बन्धित, इसके पूर्व मेरी तीन पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं—राजस्थान का आधुनिक हिन्दी काव्य, राजस्थान की हिन्दी कविता और राजस्थान की कला, संस्कृति और साहित्य। इसी कड़ी में यह मेरी चौथी पुस्तक है जिसमें राजस्थान के हिन्दी काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियों को विवेचित किया गया है। मेरी अपनी सीमायें और दुर्बलतायें रही हैं। विश्लेषण का आधार मैंने उन्हीं कवियों की रचनाओं को बनाया है जो चर्चित और प्रतिष्ठित हो चुके हैं। बहुत से कवियों की चर्चा इसलिये नहीं कर पाया हूं क्योंकि वांछित सामग्री उपलब्ध करने में असमर्थ रहा हूं, फिर भी मेरी ईमानदार इच्छा यह रही है कि प्रान्त के अधिकाधिक कवि-मनीषियों को अपनी अध्ययन-सामग्री में सम्मिलित करूं। मेरा यह विवेचन केवल सर्वेक्षणमात्र है। इस दिशा में और अधिक गहरी पैठ के साथ, अधिक गहरी अन्तर्दृष्टि के साथ विवेचन प्रस्तुत किया जा सकता है। मेरा प्रयत्न तो अपने सहयात्रियों को अपने ज्ञान की सीमा-परिधि में प्रस्तुत करने का रहा है अतः जो कवि बचु छूट गये हैं, मुझे विश्वास है वे मेरी विवशता को नजरदाज करेंगे।

इसके प्रकाशन में भाई विजेन्द्र संघी की रुचि के प्रति आभार व्यक्त करना मात्र औपचारिकता होगी। उन्हीं ने बार-बार तकाजा कर इस कृति को पूरा कराया है और मात्र एक माह में प्रकाशित भी कर दिया है। सामग्री चयन और लेखन में डॉ. दिनेश के कृपापूर्ण सहयोग को मैं विशेषतः रेखांकित करना चाहूंगा। अपने शिष्य-मित्र डॉ. दुर्गाप्रसाद अग्रवाल, डॉ. कैलाश जोशी, प्रो. माधव हाड़ा, डॉ. सुधा गुप्ता आदि के प्रति भी आभारी हूं जिन्होंने समय-समय पर मेरे बोझ को हल्का किया है।

आशा है अपनी अनेक कमजोरियों, खामियों और सीमाओं के बावजूद यह कृति राजस्थान की आधुनिक कविता और कवियों का, हिन्दी जगत को थोड़ा बहुत परिचय अवश्य करायेगी।

वसंतोत्सव, 1986 प्रकाश आतुर

क्रम

1

राजस्थान की काव्य परम्परा

राजस्थान का नामकरण 'राजपूताना' के नाम से अंग्रेजो के आगमन के बाद हुआ। सम्भवतः राजपूत नरेशो के आधिपत्य के परिणामस्वरूप ही यह नामकरण किया गया जिसका स्पष्ट अभिप्राय राजपूतो के स्थान से रहा है। अंग्रेजों ने उडियाना, तिलगाना आदि के अनुकरण पर इसे राजपूताना अर्थात् राजपूतो का देश रख दिया। इसका राजस्थान नाम भी बहुत प्राचीन नही है। सर्वप्रथम जार्ज टामस ने अपने 'मिलिट्री मैमोयर्स' (1857 ई.) मे और बाद मे कर्नल टाड ने (1886 ई.) इस भू-भाग के लिये 'राजस्थान' शब्द का प्रयोग किया जो राजाओ तथा उनके स्थान का सूचक है और लोकप्रचलित 'रायथान' शब्द का रूपान्तर है।[1] जार्ज टामस के मैमोयर्स के पूर्व भी राजस्थानी भाषा के 'नैणसी की ख्यात' (सवत् 1687-1727) और 'राजरूपक' ग्रन्थो मे (1788 ई) 'राजस्थान' शब्द का प्रयोग राजधानी के अर्थ में किया गया है।[2]

मरुभूमि के सदर्भ मे राजस्थान का उल्लेख वैदिक युग से होता रहा है। ऋग्वेद मे (1, 3, 5, 6,) 'मरु' शब्द का प्रयोग हुआ है। 'महाभारत' के वन-पर्व मे तथा 'बृहत् संहिता' में भी 'मरु' शब्द प्रयुक्त हुआ है। 'शब्दार्थ चितामणी' के अनुसार राजस्थान के लिये 'जांगल' शब्द का प्रयोग भी मिलता है। बीकानेर रियासत के पूर्व नरेशो के नाम के साथ 'जंगलधर बादशाह' की उपाधि लगती रही है। ऋग्वेद मे 'मत्स्य' शब्द का जो प्रयोग हुआ है वह वस्तुत: अलवर-जयपुर के भू-भाग का क्षेत्र ही है।[3] अजमेर के निकट का भू-भाग 'पुष्करारण्य' और आबू के

---

1. राजस्थान का पिंगल साहित्य (डा. मोतीलाल मेनारिया पृ 2)
2. 'नैणसी की ख्यात' उदयपुर सरस्वती भण्डार की हस्तलिखित प्रति पृ 27 तथा ना. प्र. सभा द्वारा प्रकाशित 'राजरूपक'—पृ. 10-11
3. ना. प्र पत्रिका भाग 2 पृ. 333

पास-पास का भाग 'शाल्वदेश' कहलाता था।[1] बीकानेर का भू-भाग 'जांगल' और मेवाड़ प्रदेश 'शिविदेश' के नाम से प्रसिद्ध था।[2] इसी प्रकार वर्तमान बागड़ प्रदेश 'वागंट' के नाम से और जोधपुर-जैसलमेर वाला पश्चिमी भू-भाग 'मरुकांतर' कहलाता था। इस प्रकार राजस्थान के छोटे-छोटे हिस्सों के अलग-अलग नाम थे। सम्भवत: 'मरु' नाम इसका प्राचीनतम नाम है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व तक यह प्रदेश 'राजपूताना' कहलाता था और देशी राज्यों के भारत में विलीनीकरण के बाद इसका जो ऐकीकृत रूप गठित हुआ वह आज 'राजस्थान' के नाम से सुविदित है। कुछ लोग इसे अब भी 'अरावली प्रदेश' 'अर्बुद प्रांत' या 'मरु प्रदेश' के नाम से सम्बोधित करते हैं। छोटे-बड़े राज्यों के ऐकीकरण के बाद जो स्वतन्त्र राजनीतिक इकाई निर्मित हुई वही आज का राजस्थान है। डा. मोतीलाल मेनारिया के अनुसार 'अर्वली' शब्द डिंगलभाषा के 'आडावला' शब्द का विकृत रूप है। अंग्रेजी भाषा के उच्चारण की अपूर्णता के कारण 'आडावला' ही 'अर्वली' हो गया है। इस सम्बन्ध में 'राजस्थान थ्रू एजेज' का उद्धरण दृष्टव्य है—

The Aravali hills lie in the present district of Udaipur and derive the name from 'ADA-VALA', a Rajasthani word, meaning a beam lying across. Virtually the range lies like a beam across *Rajasthan*

हिन्दी कविता के विकास और उसे समृद्ध बनाने में राजस्थान का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। राजस्थान ने न केवल शौर्य, पराक्रम, त्याग एवं बलिदान के क्षेत्र में सारे भारत को नेतृत्व और प्रेरणा दी है अपितु संघर्ष के क्षणों में जीवट का परिचय देने के साथ-साथ स्थापत्य, शिल्प, संगीत एवं साहित्य के क्षेत्र में भी अनूठी कलाकृतियों का सृजन कर, ललित कलाओं के क्षेत्र में भी अगुआई की है। वस्तुत: राजस्थान की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि अत्यधिक पुष्ट एवं गरिमामयी रही है। यहाँ प्रागैतिहासिक युग से ही सांस्कृतिक चेतना का विकास हुआ है। सरस्वती-घाटी अनूपना और पीलीबंगा क्षेत्र में प्राप्त पुरातत्व अवशेषों ने सिद्ध कर दिया है कि इस मरु भूमि में कभी हड़प्पा और मोहनजोदड़ों को समान ही प्रागैतिहासिक बस्तियाँ थी। बनास और उसकी सहायक नदियों के क्षेत्र में हुए सर्वेक्षण से पता चला है कि इन नदियों के तट पर एक लाख वर्ष पूर्व भी मानव का निवास था और राजस्थान उस समय भी मानव इतिहास के क्षेत्र में अपना महत्वपूर्ण स्थान बना चुका था। पाषाण-युगीन संस्कृति के प्रमाण भी यहाँ चंबल घाटी, जोधपुर, उदयपुर

1. राजस्थान थ्रू द एजेज पृ. 13
2. ना. प्र. पत्रिका भाग 2 पृ. 335

ग्रौर ग्रजमेर क्षेत्रों मे प्राप्त हुए हैं। ग्रायड मे सभ्यता ग्रौर संस्कृति के जो ग्रवशेष प्राप्त हुए हैं वे यहाँ के निवासियों के सौंदर्यबोध ग्रौर सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन की परिपक्वता तथा रुचि के प्रतीक है ग्रौर इस सत्य को उद्घाटित करते हैं कि ई. पू 2000-1000 वर्ष पूर्व हमारी सांस्कृतिक चेतना कितनी प्रबुद्ध थी। राजस्थान मे सरस्वती, दृषद्वती, कालीबगा नदियो के क्षेत्र में हुए उत्खनन ग्रौर सर्वेक्षण ने सिद्ध कर दिया है कि यहाँ की संस्कृति तत्कालीन विश्व संस्कृति के समान ही महत्वपूर्ण रही है। 'ग्राकेंग्रोलोजीकल सर्वे ग्रॉफ इण्डिया' की एक स्मारिका में कहा गया है कि यदि हडप्पा ग्रौर मोहनजोदडो विशाल सिन्धु घाटी सभ्यता की दो राजधानियाँ थीं तो कालीबगा निश्चित रुप से तीसरी राजधानी कही जा सकती है। कालान्तर मे राजस्थान ने माघ जैसे कवि, ब्रह्मगुप्त जैसे गणितज्ञ, हरिभद्र सूरी जैसे चिंतक दार्शनिक दिये। ललित कलाग्रो के क्षेत्र मे भी इस प्रदेश का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। भारतीय चित्रकला का एक सम्पूर्ण युग ग्रौर एक विशिष्ट शैली, राजस्थान की ही रही है। संगीत के क्षेत्र मे महाराणा कुम्भा ग्रौर ध्रुपद विशेषज्ञ स्वामी हरिदास के योग को कैसे विस्मृत किया जा सकता है? गुप्तयुगीन शिल्प के प्रतीक यहाँ हर क्षेत्र मे विद्यमान है। भरतपुर, चित्तौड, रणथम्भौर, कुम्भलगढ के दुर्ग, बीकानेर ग्रौर जैसलमेर की हवेलियाँ, ग्रामेर ग्रौर डीग के राजप्रासाद तथा रणकपुर, देलवाडा, बाडौली के देव मंदिर उच्चकोटि के स्थापत्य के उत्कृष्ट उदाहरण हैं जिन्हे देखकर विश्व-विश्रुत शिल्प समीक्षक चकित रह गये हैं। यह परम्परा राजस्थान मे सातवीं शती से पूर्व की है, जिसके प्रमाण कालीबगा की खुदाई मे मिलते हैं।

सूरि, उद्योतन सूरि, सिद्धर्ष सूरि, जिनेश्वर सूरि, जिनचन्द्र, जिनभद्र, अभयदेव, पद्मनन्दी, महेश्वर सूरि, गुणचन्द्र गणि, नेमीचन्द्र, जिनहर्ष मणि, नयरंग आदि प्राकृत के उल्लेखनीय कृतिकार है जिन्होंने काव्य कथा, चरित आदि विविध विधाओं की प्राकृत रचनायें राजस्थान में लिखी हैं।

अपभ्र श का तो अधिकांश साहित्य, राजस्थान में ही रचा गया है। डा कस्तूरचन्द कासलीवाल की मान्यता है कि समूचे अपभ्र श साहित्य का अस्सी प्रतिशत साहित्य राजस्थान के जैन भण्डारों में उपलब्ध है और कुछ कृतियों की पाण्डुलिपियाँ तो केवल राजस्थान के ग्रन्थ भण्डारों में ही उपलब्ध हैं। अपभ्र श भाषा के अधिकांश साहित्य का सम्बन्ध किसी न किसी रूप में राजस्थान से अवश्य रहा है। कवि आसधर, धवल कवि, हरिषेण, लक्ष्मण, धनपाल धक्कड, विनयचन्द्र, जिनदत्त सूरि, अमर कीर्ति, श्रीचन्द, यशकीर्ति, धवन, जयदेव प्रभृति विद्वानों ने अपभ्र श में काव्य रचना कर साहित्य-भण्डार की अभिवृद्धि में अपना यत्किंचित योग दिया है। इनकी चर्चा अपभ्रंश काव्य-जगत् में होती है। इन सभी का रचना-क्षेत्र राजस्थान और गुजरात रहा है।

अपभ्र श काव्य की यह परम्परा, वीरगाथात्मक रासो-ग्रन्थों में और विकसित हुई। हिन्दी साहित्य के प्रारम्भिक काल में जिन कवियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा, उनमें 'खुमाण रासो' के कृतिकार दलपति विजय, 'बीसलदेव रासो' के सर्जक नरपति नाल्ह, 'पृथ्वीराज रासो' के प्रणेता चद बरदई और 'विजयपाल रासो' के कवि नल्लसिह भाट, राजस्थान के उल्लेखनीय कृतिकार रहे हैं। इन ग्रन्थों की प्रामाणिकता-अप्रामाणिकता के विवाद से अलग हट कर यदि तटस्थ दृष्टि से विचार करें तो इतना ही गौरव वृद्धि के लिये पर्याप्त है कि इन महान् ग्रन्थों की रचना, राजस्थान की धरती पर हुई थी। यह दुर्भाग्य रहा कि इन ग्रन्थो की ऐतिहासिकता की चर्चा प्रमुख रूप से हुई और इनके साहित्य-पक्ष को गौण मान लिया गया। "ये रासो ग्रन्थ उस युग की मन स्थिति के परिचायक हैं जबकि निरकुश एकतन्त्र की बढती प्रवृत्ति के परिणामस्वरूप सामूहिक राजनीतिक चेतना नष्ट हो गई थी। जिससे विदेशियों का विरोध करने की क्षमता समाप्त हो गई थी।" वस्तुत ये ग्रन्थ अपने प्रक्षिप्तांशो के कारण ही विवाद का विषय बने हैं लेकिन तटस्थ गम्भीरता से विचार करने पर डा रामगोपाल 'दिनेश' के इस मत से सहमत होना पड़ेगा कि "इन काव्यों की विषय-वस्तु का मूल सम्बन्ध राजाओं के चरित तथा प्रशसा से है फलत इनका आकार रचनाकारों की मृत्यु के पश्चात् भी बढता रहा। इनके रचयिता जिस राजा का वर्णन करते थे उसके उत्तराधिकारी जागए अपने आश्रित अन्य कवियों से उसमें अपना चरित भी सम्मिलित करा ते थे—यही कारण है कि इन ग्रन्थों में [illegible]

मिलता है तथा भाषा मे भी उत्तरवर्ती भाषा-रूपो की झलक पाई जाती। राजस्थान के कतिपय वृत्त-संग्रहकर्ताओं ने अधिकांश रासो काव्यों को इन्हीं बातो के कारण अप्रामाणिक रचनाएं माना है। भाषा वैज्ञानिको से उन्हें समर्थन भी मिल गया पर इतिहास के मर्म को समझने वाले उन वृत्त संग्रहको के कथनो पर विश्वास नही करते। सत्य यही है कि इन रासो ग्रन्थो की रचना आदिकाल मे ही हुई थी और उनमे जो अंश उत्तरवर्ती राजाओं से सम्बन्धित है, वे प्रक्षिप्त हैं।" इन कृतियो का मूल्यांकन इनके कला वैभव के आधार पर ही किया जाना चाहिये। इन ग्रन्थो की प्रामाणिकता को संदिग्ध मानने वाले विद्वान भी इनके कला एवं भाव पक्ष पर मुग्ध रहे हैं। ये ग्रन्थ सम्प्रेषण क्षमता और भाषा-रूप की दृष्टि से बड़े महत्व के हैं।

राजस्थान के सामंती परिवेश मे धर्म साधना, जीवन का अंग बन चुकी थी। वस्तुत. धर्म की रक्षा के नाम पर ही यहाँ के राजाओं और सामतो ने मुसलमानों और मुगलो से लोहा लिया अत वीर रसात्मक साहित्य के साथ-साथ पौराणिक और धार्मिक विषयों को लेकर भी साहित्य रचा जाता रहा। राजस्थान मे वल्लभ सम्प्रदाय, निम्बार्क सम्प्रदाय, दादू सम्प्रदाय, रामसनेही सम्प्रदाय के अखिल भारतीय केन्द्र इस बात के सूचक हैं कि धर्मसाधना को यहाँ कितना महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है। सगुण भक्ति की राम-कृष्ण-काव्य परम्परा तथा निर्गुण भक्ति की काव्य परम्परा मे जिन कृतिकारो की चर्चा होती रही है उनमे से अनेक श्रेष्ठ भक्त कवियों का सृजन धाम राजस्थान की धरती रही है। मीरा, नरहरिदास, कृष्णदास पयहारी, नाभादास, नागरीदास, ब्रजनिधि, चाचा हित-वृन्दावनदास आदि का सृजन हिन्दी साहित्य में श्रेष्ठ कृतित्व के रूप मे शोभित है। निर्गुण भक्ति काव्य में दादू, दरियावजी, पीपा, सहजोबाई, दयाबाई, गरीबदास रज्जब, सुन्दरदास आदि सत कवियों की वाणी इसी भू-भाग पर मुखरित हुई है। नाभादासकृत 'भक्तमाल' साहित्य के इतिहास ग्रन्थो का पूर्व-रूप है। कबीर के बाद जिस सत कवि का नाम साहित्य मे सर्वाधिक चर्चित रहा वे है दादूदयाल और उनकी रचना प्रक्रिया का जगत् राजस्थान ही रहा है। दादू पथ के अतिरिक्त विश्नोई पथ, रामसनेही सम्प्रदाय, चरणदासी सम्प्रदाय, निरजनी पथ आदि के निर्गुणिया संतो ने अपनी अनगढ भाषा मे काव्य मर्म का शृंगार किया है। दादू के शिष्य सुन्दरदास दौसा के थे और सत कवियो में वे 'सर्वाधिक शास्त्रीय ज्ञान सम्पन्न' महात्मा कहे गये हैं। सुन्दरदास संतों मे कला-निपुण एवं कवियो मे सत हैं। मध्य-युग मे कुछ 'पंथ' तो ऐसे प्रचलित हुए जिनका विस्तार क्षेत्र मात्र राज-

भक्ति युग मे भी राजस्थान के भक्तों और

शृंगार बना और उससे भाषा साहित्य

राजस्थान की काव्य परम्परा की चर्चा करते हुए इन साहसिक चारण कवियों की चर्चा करना इसलिये आवश्यक है, क्योंकि यह सूत्र परम्परा की कड़ियों को जोड़ने की दृष्टि से बड़ा महत्व रखता है। इसके अतिरिक्त इससे इस गौरव की अनुभूति भी होती है कि राजस्थान का कवि काल संदर्भ में वर्तमान अपने समय के जीवन्त प्रश्नों व समस्याओं के प्रति कितना जागरूक था और सामाजिक प्रतिबद्धता की दृष्टि से वह अपने कर्तव्यबोध से कितना परिचित था। राजस्थान के शासकों ने अंग्रेजों से जो समझौते और सन्धियाँ की और जिस प्रकार अपनी अस्मिता का गौरांग महाप्रभुओं के चरणों में समर्पित किया उसकी तीव्र आलोचना यहाँ के चारणी काव्य में हुई है। बांकीदास की रचनायें 'आयो इंगरेज मुलक रै ऊपर' तथा 'गोरा हटजा' इस दृष्टि से उल्लेखनीय रचनायें हैं। भरतपुर के कवि हुलाजी, कवि भावमल्ल, मुरलीधर 'प्रेम', कवि हरिनारायण, कवि राघवदास, महडू चूलजी, चारण कवि भोपालदान, चारलू के कवि चैनजी, जोधपुर के मानसिंह, लालस नाथूराम, लालस नवलजी, कवि गिरिधरदान, बारहठ किसनदास, बारहठ त्रिलोकदान आदि का नाम इस संदर्भ में लिया जा सकता है। चारणों द्वारा रचित इस काव्य में व्यक्तिपूजा का भाव अवश्य है किन्तु वह परिस्थिति की अनिवार्यता थी। इस काव्य का कलागत मूल्य अधिक नहीं है किन्तु सामयिकता, परिस्थिति चित्रण तथा जन-जन को प्रेरित करने की दृष्टि से इसका पर्याप्त महत्व है। समय की शिला पर चाहे इन कृतिकारों के हस्ताक्षर बहुत समय तक न रहे किन्तु चेतना और युग बोध के सजग प्रहरी के रूप में इन कवियों के योगदान को नहीं भुलाया जा सकता। इस काव्य सृजन की ओर दरबारी इतिहासकारों और अंग्रेज लेखकों का ध्यान या तो गया नहीं अथवा इन्हें जानबूझ कर अनदेखा किया गया। सूर्यमल्ल मिश्रण इसी चारण-काव्य परम्परा के कीर्तिशिखर हैं जिन पर समूचे भारतीय वाङ्मय को गर्व है। डा. मोतीलाल मैनारिया ने उन्हें भूषण से कहीं अधिक श्रेष्ठ मानते हुए उनकी तुलना ग्रीक कवि होमर से की है। भाषाविद् स्वर्गीय सुनीति कुमार चटर्जी ने सूर्यमल्ल के सम्बन्ध में ठीक ही कहा है कि धारावाहिक रूप से जो परम्परा अपभ्रंश काल में हजार वर्ष तक चली आई उसे ही सूर्यमल्ल बीसवीं शती के द्वितीयार्द्ध तक पहुंचा कर विदा हो गये। अपने काव्य और कविता को Lay of The Last Minstrel बना गये और वे स्वयं बने The Last of Giants इतिहास इस बात का साक्षी है कि सन् 57 की क्रांति को सफल बनाने के अन्तिम प्रयास राजस्थान की धरती पर ही किये गये। यद्यपि राजस्थान के तत्कालीन अधिकांश नृपतियों एवं सामंतों ने स्वार्थवश क्रांतिकारियों का साथ नहीं दिया किन्तु जनता ने इस दिशा में बड़ा उत्साह दिखाया। इतिहासकार प्रिचार्ड ने 'म्युटिनी इन राजपूताना' में ठीक ही कहा है कि अगर राजस्थान में राजाओं ने इस अवसर पर नेतृत्व दिया होता तो बहुत सम्भव था कि क्रांति के ...

डण्डियों और प्रशस्त राजमार्गों से आगे बढ़ा है जिन पर हिन्दी कविता, कभी रुठती, कभी ठिठकती, कभी मचलती और कभी द्रुतगति से दौड़ती चली है। प्रवृत्तियों की दृष्टि से राजस्थान की हिन्दी कविता को सामान्य हिन्दी काव्य की पृष्ठभूमि से अलग करके देखना उचित नहीं है। उन्हीं परिस्थितियों और परम्पराओं का चित्रण-पोषण राजस्थान के हिन्दी काव्य में हुआ है जो भारतीय स्तर पर हिन्दी काव्य को मूर्त रूप दे रही थी। वस्तुतः राजस्थान का हिन्दी काव्य अपनी सम्पूर्ण चेतना और अनुभूति-अभिव्यक्ति के लिये हिन्दी की उन काव्य-प्रवृत्तियों से प्रभावित है जो हिन्दी काव्य को गढ़ रही थीं।

राजस्थान की हिन्दी कविता से सम्बन्धित, इसके पूर्व मेरी तीन पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं—राजस्थान का आधुनिक हिन्दी काव्य, राजस्थान की हिन्दी कविता और राजस्थान की कला, संस्कृति और साहित्य। इसी कड़ी में यह मेरी चौथी पुस्तक है जिसमें राजस्थान के हिन्दी काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियों को विवेचित किया गया है। मेरी अपनी सीमायें और दुर्बलतायें रही हैं। विश्लेषण का आधार मैंने उन्हीं कवियों की रचनाओं को बनाया है जो चर्चित और प्रतिष्ठित हो चुके हैं। बहुत से कवियों की चर्चा इसलिये नहीं कर पाया हूं क्योंकि वाछित सामग्री उपलब्ध करने में असमर्थ रहा हूं, फिर भी मेरी ईमानदार इच्छा यह रही है कि प्रान्त के अधिकाधिक कवि-मनीषियों को अपनी अध्ययन-सामग्री में सम्मिलित करूं। मेरा यह विवेचन केवल सर्वेक्षणमात्र है। इस दिशा में और अधिक गहरी पैठ के साथ, अधिक गहरी अंतर्दृष्टि के साथ विवेचन प्रस्तुत किया जा सकता है। मेरा प्रयत्न तो अपने सहयात्रियों को अपने ज्ञान की सीमा-परिधि में प्रस्तुत करने का रहा है अतः जो कवि बंधु छूट गये हैं, मुझे विश्वास है वे मेरी विवशता को नजरदाज करेंगे।

इसके प्रकाशन में भाई विजेन्द्र सघी की रुचि के प्रति आभार व्यक्त करना मात्र औपचारिकता होगी। उन्हीं ने बार-बार तकाजा कर इस कृति को पूरा कराया है और मात्र एक माह में प्रकाशित भी कर दिया है। सामग्री चयन और लेखन में डॉ. दिनेश के कृपापूर्ण सहयोग को मैं विशेषतः रेखांकित करना चाहूंगा। अपने शिष्य-मित्र डॉ. दुर्गाप्रसाद अग्रवाल, डॉ. कैलाश जोशी, प्रो. माधव हाडा, डॉ. सुधा गुप्ता आदि के प्रति भी आभारी हूं जिन्होंने समय-समय पर मेरे बोझ को हल्का किया है।

आशा है अपनी अनेक कमजोरियों, खामियों और सीमाओं के बावजूद यह कृति राजस्थान की आधुनिक कविता और कवियों का, हिन्दी जगत को थोड़ा बहुत परिचय अवश्य करायेगी।

2
राजस्थान के आधुनिक हिन्दी काव्य की पीठिका

अपने समकालीन काव्य-सृजन का विवेचन या मूल्यांकन करना अत्यधिक जटिल एवं विवादास्पद कार्य है। बहुत अधिक तटस्थ एवं निष्पक्ष रहने के बाद भी इस बात की सम्भावना बनी रहती है कि इस प्रकार का विवेचन स्वयं में पूर्ण न हो अथवा अनावश्यक आलोचना-प्रत्यालोचना का विषय बन जाये। राजस्थान के आधुनिक प्रमुख कवियों ने 'अनेक क्षितिजों' का स्पर्श किया है और उन में स्वर-परिवर्तन की स्थिति दृष्टिगत होती है। प्रांत के प्रतिनिधि हिन्दी कवियों की काव्यधारा, एक नहीं, अनेक मोड़ों को पार करती गतिशील रही है। जहां 'अनेक क्षितिज एक ही क्षितिज में समाहित हो जायें' अथवा जबकि सम्पूर्ण रचना प्रक्रिया अपने विकास के दौर से गुजर रही हो, वहां अन्तिम निष्कर्ष दिये भी कैसे जा सकते हैं? लेकिन सृजन के साथ साथ यदि उस पर विचार विमर्श और उसका मूल्यांकन भी होता रहे तो भविष्य के पथ स्पष्ट होने के साथ साथ सुनिश्चित भी होता है और इस सारी प्रक्रिया में नये आयामों की खोज स्वतः हो जाती है। इस विवेचन में मेरा लक्ष्य राजस्थान में वर्तमान में रचे जाने वाले काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियों और उन कवियों तक सीमित रहा है, जिन्हें एक सीमा तक प्रतिनिधि कवि कहा जा सकता है।

विगत अध्याय में राजस्थान की समृद्ध काव्य परम्परा की संक्षिप्त चर्चा की जा चुकी है। आधुनिक युग में भी यह परम्परा नये नये रूपों व नवीनतम आयामों के माध्यम से साहित्य भण्डार की अभिवृद्धि में अपना सक्रिय योग दे रही है। मैं यह बात पुन: दोहराना चाहूँगा कि राजस्थान का आधुनिक हिन्दी काव्य, अपनी पूर्व परम्परा का ही विकसित सोपान है। आधुनिक हिन्दी काव्य के पीछे जो अन्तश्चेतना झांक रही है वह गहराई में कहीं न कहीं अपनी पूर्व-परम्परा से जुड़ी हुई अवश्य है। परिवर्तित परिवेश में उसका रूप-रंग, कथ्य-शिल्प, भंगिमा और मुहावरा बदला अवश्य है, जो अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता किन्तु वह निश्चित रूप से एक

स्थिति और प्रभाव संदर्भ तक यहाँ के कवि की चेतना राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय भाव-जगत से जुड़ी रही है और चंद बरदाई, दादू, मीरा, बिहारी, पद्माकर या सूर्यमल्ल मिश्रण की परम्परा कभी वीर रसात्मक काव्य के रूप में, कभी दर्द की अतल गहराइयों का स्पर्श करने वाली गीति लहरियों में, कभी सौंदर्य एवं रूप के भव्य चित्र उकेरने की आकांक्षा में, कभी भावोपी मुद्रा की तल्खियों में, कभी राष्ट्रीयता और दायित्वबोध के आस्थावान स्वरों में बराबर मुखरित होती रही है। आधुनिक युग की राष्ट्रीय काव्यधारा, छायावादी गीतिधारा और प्रगतिवादी काव्य के पीछे जो प्रतश्चेतना झांक रही है वह गहराई में कहीं न कहीं अपनी पूर्व परम्परा से जुड़ी हुई अवश्य है। परिवर्तित परिवेश में उसका रूप-रंग, कथ्य-शिल्प, भंगिमा और मुहावरा बदला अवश्य है, जो नितान्त स्वाभाविक भी है, लेकिन वह एक जीवन्त परम्परा की कड़ी है। नये परिवेश व नवबोध वाली रचनाओं में पाश्चात्य अनुकरण है लेकिन सार्थक रचनायें वे ही सिद्ध हो रही हैं जिनमें केवल अनुकरण या नकल नहीं है अपितु इस धरती से जुड़े रहने की आकांक्षा और स्वप्न है और जिनमें कथ्य और शिल्प दोनों में ही केवल नयेपन का शिकार न होकर अनुभूति और संवेदना के उस धरातल का स्पर्श करते हैं जो काव्य को अमरत्व और आत्मा को तोष देता है। राजस्थान में इन दिनों बहुत रचा जा रहा है और नयेपन का आग्रह भी उसमें है। अभी तो उसकी गुण-अवगुण की चर्चा ही सम्भव है उसके भविष्य का स्थान निर्धारित करने का अभी समय नहीं आया है। लेकिन इतना तो कहा ही जा सकता है कि 'नये' के नाम पर हिन्दी में जो कुछ रचा जा रहा है, यहाँ का सृजन उससे उन्नीस नहीं है।

2
राजस्थान के आधुनिक हिन्दी काव्य की पीठिका

अपने समकालीन काव्य-सृजन का विवेचन या मूल्यांकन करना अत्यधिक जटिल एवं विवादास्पद कार्य है। बहुत अधिक तटस्थ एवं निष्पक्ष रहने के बाद भी इस बात की सम्भावना बनी रहती है कि इस प्रकार का विवेचन स्वयं में पूर्ण न हो अथवा अनावश्यक आलोचना-प्रत्यालोचना का विषय बन जाये। राजस्थान के आधुनिक प्रमुख कवियों ने 'अनेक क्षितिजों' का स्पर्श किया है और उन में स्वर-परिवर्तन की स्थिति दृष्टिगत होती है। प्रांत के प्रतिनिधि हिन्दी कवियों की काव्यधारा, एक नहीं, अनेक मोड़ों को पार करती गतिशील रही है। जहां 'अनेक क्षितिज एक ही क्षितिज में समाहित हो जायें' अथवा जबकि सम्पूर्ण रचना प्रक्रिया अपने विकास के दौर से गुजर रही हो, वहां अन्तिम निष्कर्ष दिये भी कैसे जा सकते हैं? लेकिन सृजन के साथ साथ यदि उस पर विचार विमर्श और उसका मूल्यांकन भी होता रहे तो भविष्य के पथ स्पष्ट होने के साथ साथ सुनिश्चित भी होता है और इस सारी प्रक्रिया में नये आयामों की खोज स्वतः हो जाती है। इस विवेचन में मेरा लक्ष्य राजस्थान में वर्तमान में रचे जाने वाले काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियों और उन कवियों तक सीमित रहा है, जिन्हें एक सीमा तक प्रतिनिधि कवि कहा जा सकता है।

विगत अध्याय में राजस्थान की समृद्ध काव्य परम्परा की संक्षिप्त चर्चा की जा चुकी है। आधुनिक युग में भी यह परम्परा नये नये रूपों व नवीनतम आयामों के माध्यम से साहित्य भण्डार की अभिवृद्धि में अपना सक्रिय योग दे रही है। मैं यह बात पुनः दोहराना चाहूंगा कि राजस्थान का आधुनिक हिन्दी काव्य, अपनी पूर्व परम्परा का ही विकसित सोपान है। आधुनिक हिन्दी काव्य के पीछे जो अन्तश्चेतना झांक रही है वह गहराई में कहीं न कहीं अपनी पूर्व-परम्परा से जुड़ी हुई अवश्य है। परिवर्तित परिवेश में उसका रूप-रंग, कथ्य-शिल्प, भंगिमा और मुहावरा बदला अवश्य है, जो अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता किन्तु वह निश्चित रूप से एक

जीवत परम्परा की कड़ी है। द्विवेदी युग से लेकर आधुनिक युग की अत्याधुनिक काव्य-प्रवृत्ति के प्रकरण तक पहुँचने में राजस्थान का हिन्दी काव्य और कवि निरंतर गतिशील और प्रबुद्ध रहे हैं। बदलते परिवेश और परिवर्तित होते जीवन मूल्यों के साथ साथ यहाँ के कवि का स्वर भी बदला है। दोहरी गुलामी के वातावरण में पले राजस्थान के कवि ने कभी भी न तो अपने दायित्व व कविकर्म को विस्मृत किया और न अपने परिवेश की अवहेलना की और काव्य के बदलते स्वर और रूप संयोजन और संवर्द्धन में अपनी प्रतिभा का पर्याप्त कौशल भी प्रदर्शित किया।

राजस्थान की वर्तमान काव्यधारा की प्रमुख प्रवृत्तियों की चर्चा करने के पूर्व प्रांत के स्वनामधन्य कवि स्वर्गीय सुधीन्द्र के सम्बन्ध में कुछ कहना उचित प्रतीत होता है। राजस्थान में वर्तमान युग का प्रारम्भ सुधीन्द्र के आगमन के बाद से ही माना जाना चाहिये। सुधीन्द्र का आगमन उस समय हुआ जबकि इस प्रांत में एक ओर तो द्विवेदी युग की सांस्कृतिक आस्था-आदर्शों की सम्पन्नता थी तो दूसरी ओर काव्यात्मा गरीबी, गुलामी और गन्दगी से मुक्त होने के लिए अन्तर्मुखी हो गीतमयी हो रही थी। युग व्यापी नैराश्य, कुंठा, अतृप्ति जो यौवन, सौन्दर्य और सत्य की प्राप्ति के अभाव में स्वप्निल और अशरीरी हो गई थी, अब तरल-सरल अन्तःकरण की भाव-वीथियों के रूप में अनेकानेक गीतों में उच्छ्वसित होने लगी।[1] वस्तुतः सुधीन्द्र ने ही सर्वप्रथम राजस्थान की काव्य-प्रतिभा को अखिल भारतीय स्तर पर प्रतिष्ठित किया। यदि 'मुकुल' ने अपने ललित, ओजस्वी, सशक्त कंठ द्वारा राजस्थान की काव्य प्रतिभा को प्रादेशिक सीमाओं से बाहर तक पहुँचा कर यश अर्जित किया तो सुधीन्द्र ने उसे उच्चकोटि का स्तर दिया। राजस्थान के ये दो कवि ऐसे हैं जिन्हें आधुनिक राजस्थान के काव्य में विशिष्ट महत्व प्राप्त है। सुधीन्द्र की कविता में छायावादी सम्वेदना, राष्ट्रीय चेतना, प्रगतिवाद का सुनियोजित स्वर और आशा-निराशा के अनेक प्रकार के गहरे रंग उभरे हैं। इनके काव्य में जागृति का स्वर, स्वर्णिम विहान की आकांक्षा और सामाजिक वैषम्य के प्रति आक्रोश मुखर हुआ है। अपने समय की सभी प्रमुख काव्यधाराओं को सुधीन्द्र ने आत्मसात किया और उनकी गहराइयों तक उतर उन्हें न जाने कितने अर्थ दिये। शौर्य, प्रेम एवं [illegible] की दिशाओं में उनका [illegible] था। गांधी-युग में जन्म लेकर, [illegible] में अपनी [illegible] के [illegible] का विस्तार कर, सौन्दर्य की पृष्ठभूमि पर काव्य-सृजन कर उन्होंने इसकी [illegible] को अमर बना दिया। एक दार्शनिक की जिज्ञासा, [illegible] की अनुभूति और [illegible] का [illegible] स्वर इनके काव्य में मुखरित हुआ है। एक ओर ये [illegible] के समान [illegible] हैं, दूसरी ओर [illegible] [illegible] [illegible] करते हैं —

1. [illegible]

कल्पना के पंख पर बंधी हुई मैं
पांव में जंजीर है संसार की।
बांसुरी कैसे बजाऊं मैं प्रणय की
जब प्रलय की सुन रहा हुंकार मैं।
प्राज जाने दो कि जन-संकट बुलाता
लौट कर जीता, कहूंगा बात तुम से प्यार की।

(अमृतलेखा)

इस प्रसंग में यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि राजस्थान के आधुनिक कवियों में से अधिकांश की मनश्चेतना का संस्कार, स्वतन्त्रता संग्राम की आशा-निराशा और उसमें भविष्य की प्रतीक्षा ने किया। कवि नन्द चतुर्वेदी के शब्दों में-वस्तुत: एक व्यापक सन्दर्भ में यहां के रचनाकार 'इन्क्यूबेटर' होकर ही स्वतन्त्रता के गर्भ में जी रहे थे। जब कवि की मनश्चेतना का संस्कार हो रहा था, तो उस प्रवाह में प्रांत के कवि के ऐतिहासिक प्रसंगों को रचना में अवतारित किया, अन्योक्तियां लिखी, नाटक खेले, सुधार समितियां बनाईं, मुट्ठी भर व्यक्तियों के स्वामित्व को चुनौती दी, व्यक्ति की प्रतिष्ठा का स्वर उभारा, नारी के उत्कट प्रणयाराधन को शुचिता दी, धर्म-भेद के कुरूप प्रसंगों के प्रति सामान्य-जन में रोष उत्पन्न किया और वह सब कुछ लिखा जो आक्रोश में लिखा जा सकता था। वस्तुत: स्वतन्त्रता संग्राम के अन्तिम चरण में कवियों का कंठ-स्वर राजस्थान के छोटे छोटे भू-भागों की सीमा को लांघ कर फैलने लगा। इस स्वर को राजस्थान की काव्य चेतना का हस्ताक्षर कहना अधिक औचित्यपूर्ण होगा। इस परिवर्तन की दो विशिष्टतायें उल्लेखनीय हैं। एक तो यह कि इन कवियों की रचनाओं में सामाजिक दायित्व का स्पष्ट बोध प्रतीत होता है और दूसरी यह कि ये कवि सामाजिक दायित्व के साथ साथ आत्मा के स्पन्दन को कविता के रंग से पकड़ने की क्षमता को प्रदर्शित करते हैं। प्रकारांतर से ये कवि खड़ी बोली के उस स्वर का प्रतिनिधित्व करते हैं जो नई सामाजिक क्रांति और काव्य-सौन्दर्य की विस्तार कामना में सहायक हो रहा था।

राजस्थान की काव्य-यात्रा की चर्चा करते समय कवियों के प्रथम सहकारी प्रकाशन 'सप्त किरण' की चर्चा करना अनुचित नहीं होगा। यद्यपि बाद के वर्षों में अनेक कवि-बन्धुओं की सामूहिक कृतियां प्रकाशित हुई किन्तु 'सप्तकिरण' प्रथम सहकारी काव्य संकलन है और 'तार सप्तक' के अनुकरण पर ही यहां के सात कवियों की रचनाओं को संकलित किया गया। राजस्थान के पुनर्गठन के बाद यह पहला साहित्यिक प्रयास था जो प्रांत के कवियों की रचनाओं को सामूहिक रूप से प्रकाशित करने की दृष्टि से किया गया। इसमें उन सात कवियों को सम्मिलित किया गया जो मित्रता के वातावरण में एक साथ एकत्रित हुए थे। ये कवि हैं-कमलाकर, कुनिश, कन्हैयालाल सेठिया, नन्द चतुर्वेदी, प्रकाश आतुर, सुधीन्द्र और शान भारिल।

इसमें मुकुल और शलभ को भी सम्मिलित करने का मूल प्रस्ताव था किन्तु मुकुल ने इस दिशा में उत्साह नहीं दिखाया और शलभ ने व्यक्तिगत कारणों से इसमें सम्मिलित होने से असहमति व्यक्त की। इसके प्रकाशन की योजना सुधीन्द्र की स्वीकृति से ही बनी थी और नन्द चतुर्वेदी ने इसका संपादन किया। ऐतिहासिक दृष्टि से इस काव्य का बड़ा महत्व है। इसके प्रकाशन से पूर्व ही सुधीन्द्र का निधन हो गया और इस संकलन को उनकी स्मृति को समर्पित कर दिया गया। बाद में अन्य सहकारी काव्य सकलनों का प्रकाशन भी हुआ जिनमें क्षेत्रीय आधार पर नये हस्ताक्षरों को सम्मिलित किया गया है। इनमें 'स्वर लहरी' (स. विष्णुदत्त मानवी, जोधपुर) 'जोधपुर के वर्तमान कवि' (स हरमन चौहान, रणवीर भंडारी) 'प्रज-निका' (स महेन्द्र) 'वनपाखी के स्वर' (स शलभ) संवेदनदति (स नंदकिशोर आचार्य) 'राजस्थान के हिन्दी कवि' (स मधुकर गौड़) 'राष्ट्र मगल' (स. इन्द्रराज वैद) 'हाड़ौती आचल' के कवि (स. कमलेश प्रधान) 'हाड़ौती अचल का विजय घोष' (स गजेन्द्र सोलकी) पुष्पांजलि (स विष्णुदत्त मानवी) किसलय (नारायण चतुर्वेदी) प्रस्तुति—1 (सं ज्ञान भारिल) 'लेखनी के शास्त्र' (स. शांति भारद्वाज-प्रकाश आतुर) आदि उल्लेखनीय हैं।

राजस्थान का आधुनिक हिन्दी काव्य उन्हीं पगडंडियों और प्रशस्त राजमार्गों से होकर आगे बढ़ा है जिन पर हिन्दी कविता, कभी रुकती, कभी मचलती, कभी ठिठकती और कभी द्रुतगति से दौड़ती हुई चली है। प्रवृत्तियों की दृष्टि से सामान्य हिन्दी काव्य की पृष्ठभूमि से, राजस्थान की हिन्दी कविता को अलग करके देखना उचित प्रतीत नहीं होता। उन्हीं परिस्थितियों और परम्पराओं का विकास-प्रोत्साहन राजस्थान के हिन्दी काव्य में हुआ है जो विशाल स्तर पर हिन्दी काव्य को पूर्ण रूप दे रही थी। राष्ट्रीय काव्यधारा, छायावादी गीतिधारा, प्रगतिवादी काव्यधारा और प्रयोगधर्मी नई भाव-बोध वाली काव्यधारा, ये जो विविध रूप और आयाम हम हिन्दी साहित्य में देखने को मिलते हैं, राजस्थान का काव्य उन से असम्पृक्त या अप्रभावित नहीं रहा है। वस्तुतः राजस्थान का हिन्दी काव्य अपनी सम्पूर्ण चेतना और अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के लिये हिन्दी की उन विविध काव्यधाराओं से प्रभावित है जो परिनिष्ठित वादों के प्रभाव से विस्तृत आयामों तक हिन्दी काव्य को ला रही थी। प्रस्तुत विवेचन के लिए उन्हीं प्रवृत्तियों को आधार के रूप में लिया गया है किन्तु साहित्य में मान्य स्वीकृति मिल चुकी है। सुविधा की दृष्टि से राजस्थान के हिन्दी काव्य का विवेचन [illegible] प्रवृत्तियों के आधार पर किया जा सकता है—राष्ट्रीय काव्यधारा, छायावादी गीतिधारा, प्रगतिवादी काव्यधारा तथा प्रयोगवादी, नई [illegible] के आधार पर प्रवृत्तिगत [illegible] किया जा रहा है।

3
राष्ट्रीय काव्य धारा

अंग्रेजी में जिसे 'नेशनलिस्टिक' कहा गया है, राष्ट्रीय शब्द उसी का पर्याय है। विद्वान जिमरन ने अपनी पुस्तक 'नेशनलिज्म एण्ड गवर्नमेन्ट' में लिखा है—"मेरी दृष्टि में राष्ट्रीयता का प्रश्न सामूहिक जीवन, सामूहिक विकास और सामूहिक आत्मसम्मान से जुड़ा हुआ है।" भूमि, भूमिवासी-जन और जन-संस्कृति, तीनों के सम्मिलन से राष्ट्र का स्वरूप बनता है। भूमि अर्थात् भौगोलिक एकता, जन अर्थात् जनगण की राजनीतिक एकता और जन-संस्कृति अर्थात् सांस्कृतिक एकता, तीनों के समुच्चय का नाम राष्ट्र है। राष्ट्र में भौगोलिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक इकाइयां पुंजीभूत हैं। इन तीनों इकाइयों के संकोच और विस्तार के साथ राष्ट्र और राष्ट्रीयता का स्वरूप भी संकुचित और विस्तृत होता रहता है।[1]

आधुनिक युग में राष्ट्रीयता का स्वरूप, मध्ययुग की अपेक्षा अधिक व्यापक हुआ है। 1857 ई. के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम की असफलता ने राष्ट्रीय भावनाओं को जमाने में महत्वपूर्ण योग दिया है। वह जन-आंदोलन यद्यपि असफल हो गया किन्तु अपने पीछे एक राष्ट्रीय चेतना छोड़ गया। अंग्रेज शासक के विरुद्ध हिन्दुस्तान की संगठित राष्ट्रीय भावना का वह प्रथम आह्वान था और तभी से हमारी राष्ट्रीयता का जयनाद प्रारम्भ हो गया। उत्तर मध्ययुग की चेतना और इस चेतना में साम्य केवल यह है कि दोनों में हिन्दुत्व की प्रबल चेतना थी पर अतर और भी अधिक स्पष्ट है। शिवाजी और भूषण की हिन्दू-भावना सामंती थी जबकि दयानन्द, राममोहन आदि की हिन्दू-भावना का स्वरूप सांस्कृतिक एवं सामाजिक था। दयानन्द का भारत, कश्मीर से कन्याकुमारी तक का भारत था। राष्ट्रीयता के विकास का अगला चरण गांधीजी से प्रेरित था अतः अब राष्ट्र प्रादेशिकता, प्रांतीयता, साम्प्रदायिकता आदि से ऊपर उठकर सम्पूर्ण भारत की एक संगठित इकाई बन गया था। गांधीजी ने जाति-भेद को व्यर्थ बताते हुए यह

1. हिन्दी कविता में युगान्तर—डा. सुधीन्द्र

बात हृदयगम कराई कि सभी विषमताओं का मूल कारण, चाहे वे साम्प्रदायिक हों या आर्थिक या राजनीतिक, विदेशी शासन ही है। अतः स्वराज्य के लिये संघर्ष राष्ट्रीयता का अनिवार्य अंग बन गया।[1] राष्ट्रीयता के मूल में देशभक्ति की भावना निहित रहती है। देशभक्ति में व्यक्ति का अहं, समष्टदेश और देशवासियों के अहं में लीन होकर अपने रूप को विस्तार देता है क्योंकि वहां व्यक्ति का नहीं, समष्टि का महत्व होता है। इस प्रकार राष्ट्रीय-साहित्य में किसी भी देश या जाति का समूचा रागात्मक-रूप समाहित हो जाता है। वैसे देश-प्रेम की वृत्ति स्वाभाविक भी होती है लेकिन विशेष राजनीतिक परिवेश में वह और अधिक प्रबल हो जाती है। इस प्रकार के काव्य में उत्साह, आवेश, अतीत गौरव का स्मरण तथा शौर्य एवं बलिदान के भाव स्वतः प्रेरक तत्व के रूप में निहित रहते हैं। इस प्रकार के काव्य में यह सम्भावना बराबर बनी रहती है कि वह स्थायी महत्व ग्रहण न कर पाये क्योंकि उसका लक्ष्य अपने समय के विशाल जन-समुदाय में चेतना जागृत करना होता है। जातीय गौरव की भावना, अतीत का गौरव गान, देश-प्रेम, त्याग एवं बलिदान की उत्कट अभिलाषा, उत्साह, क्रांति का आह्वान, निर्माण का स्वर, विदेशी शासक के प्रति तीव्र घृणा और स्वराष्ट्र की सर्वोपरि महिमा का यशोगान आदि विभिन्न रूपों में राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति होती है। वस्तुतः राष्ट्रीयता के आयाम बहुत विस्तृत हैं अतः विविध संदर्भों और अर्थों में कवि ने इसकी अभिव्यक्ति की है। सारतः कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय साहित्य के अन्तर्गत वह समस्त साहित्य लिया जा सकता है जो किसी देश की जातीय विशेषताओं का परिचायक हो। राष्ट्रीय काव्य, देश-प्रेम की अभिव्यक्ति है और इसमें आवेश, उत्साह, अतीत स्मरण, पूर्वजों का गौरव गान, देश महिमा का अंकन आदि होता है। विशाल जन-समुदाय में चेतना जागृत करने की दृष्टि से इस प्रकार के काव्य का बड़ा महत्व है। स्वतन्त्रता संग्राम के अन्तिम चरण में हिन्दी कवियों के जागे हुए स्वर को शीघ्र ही सम्पूर्ण प्रांत में व्याप्त होने और प्रतिष्ठा प्राप्त करने का संयोग मिला और जब देश ने स्वतन्त्रता उपलब्ध की तब राजस्थान को भी इस नये भाग्योदय का सुख मिला। कवियों के सृजन पर इस परिवर्तन का यह प्रभाव हुआ कि वे एक विशाल काव्य-परम्परा के समक्ष आकर खड़े हो गये और उन्हें अपेक्षाकृत अधिक रसज्ञजनों के प्रति निवेदित होने की जिम्मेदारी स्वीकारनी पड़ी। यह संयोग राजस्थान के कवियों के लिये नया तो था किन्तु वह उसका कामनापूर्ण स्वप्न भी था।[2]

राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने तथा अधिकारों की लड़ाई का समर्थन करने तथा स्वतन्त्रता की भावना को बलवती प्रेरणा देने में, राजस्थान के कवियों का

1. आधुनिक हिन्दी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ—डा. नगेन्द्र पृ. 25-28
2. राजस्थान के कवि भाग—1 (स. नंद चतुर्वेदी पृ. 30

महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इसे परिस्थितियों का प्रभाव ही कहा जायगा कि जन-आन्दोलन के दिनों जिन कवियों ने जन-जन को प्रेरित किया, उनमें से प्रायः सभी राजनीति के सक्रिय कार्यकर्ता थे। राजस्थान की काव्य-परम्परा को समझने के लिये प्रजामण्डल आन्दोलन की इस पृष्ठभूमि को जानना नितान्त आवश्यक है क्योंकि स्वतन्त्रता संग्राम की पृष्ठभूमि में ही यह काव्य का सृजन एवं विकास हुआ है। इन कवियों के काव्य में चाहे ऊंची कलात्मकता के दर्शन न होते हों, पर यह सत्य है कि उन्होंने सामंती शोषण से पीड़ित जनता को जगाया और उसे नई दृष्टि दी। प्रजामण्डल के माध्यम से जिस जन-आन्दोलन का श्रीगणेश हुआ, उसने जागृति का नया विहान दिया। इन जन-कवियों ने, जन-साधारण के मन में अपूर्व आत्म तथा आत्मबल का संचार किया। विजयसिंह पथिक, केसरीसिंह बारहठ, जय नारायण व्यास, हरिभाऊ उपाध्याय, माणिक्यलाल वर्मा, गोकुलभाई भट्ट, हीरालाल शास्त्री, कान्हा बादल, सुमनेश जोशी आदि अनेक कवि-कार्यकर्त्ताओं ने जनता को नेतृत्व देने के साथ-साथ जन-मन को उत्तेजित कर, जूझते रहने की बलवती प्रेरणा प्रदान की और सशक्त जन-काव्य का सृजन किया। इनमें पथिक, हरिभाऊ और जयनारायण व्यास का काव्य अपेक्षाकृत अधिक परिमार्जित एवं कलापूर्ण है। प्रजामण्डल आन्दोलन के इन नेताओं के काव्य का मूल्यांकन, तत्कालीन परिस्थितियों के परिवेश में ही सम्भव है। इन कवियों की वाणी ने तत्कालीन परिवेश में ज्योति-स्तम्भ का काम किया और राजस्थान की कोटि-कोटि जन की पीड़ा एवं आक्रोश को मुखरित कर, जुल्मी के सिंहासन को जबर्दस्त चुनौती दी।

कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं —

स्वतन्त्रता है प्राण सृष्टि के शुभ कर्मों की।
स्वतंत्रता है भित्ति भक्तों की, सद्धर्मों की।
स्वतन्त्रता है जीवन का जीवन चेतन में।
स्वतन्त्रता है शोभा की शोभा उपवन में।
जो जन अथवा राष्ट्र स्व-शासन खो देते हैं।
वे जीवित ही जीवन से कर धो लेते हैं।

(प्रह्लाद विजय-विजयसिंह 'पथिक')

भूखों की सूखी हड्डी से, वज्र बनेगा महा भयंकर।
ऋषि दधीचि को ईर्ष्या होगी, नेत्र नया खोलेंगे शंकर।
अन्न विहीन उदर की आहें, दावानल से बनकर भीषण।
भस्मसात कर देगी उनको, जो दीनों का करते शोषण।
नहीं रहेगी सत्ता तेरी, बस्ती तो आबाद रहेगी।
जालिम तेरे सब जुल्मों की, उनमें कायम याद रहेगी।

(जयनारायण व्यास)

दुश्मों के पंजों से बचो अखाड़ेसिंह,
देश पर दया करो, नहीं अब जायेंगे।
सत्ता पर आगया बड़े काम विदेश का,
जिनकी की सलाह से शासन को चलायेंगे।
गांधी की चाली टोपी रहेगी न मुगर में,
तिरंगा फहराता राजमहलों पर पायेंगे।
(गणपतमल गोरा)

शत्रु के बन्धन को नष्ट कर, शांति के चरणों से नेह कर।
बढ़ाते चलो कदम आगे, न लाना मन में कुछ भी डर।
(हरिभाऊ उपाध्याय)

जन्म तिथि स्वत्व है, स्वराज्य ही हमारा ध्येय,
कोई भी विरोध-क्या करेगा बात गानी का।
आवेगा जब समय, उन्नत समाज होगा,
जनता न आदर करेगी नीति जाली का।
पश्चिम के पाप के प्रताप का पतन होगा,
पुण्य की पताका फहरायेगा जब प्राची का।
देश को स्वतंत्र कर देंगे भारतीय हम,
अन्त कर देंगे परतंत्रता पिशाची का।
(भोलानाथ चतुर्वेदी)

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व राजस्थान मे प्रजामण्डल आन्दोलन के माध्यम से न लोकनेताओ व कवियो ने जन-जन को आव्हान किया, उसकी चर्चा पूर्व मे की चुकी है। स्वतन्त्रता सग्राम के क्षणो मे कवि ने बार-बार अतीत गौरव का रण दिला कर, जूझते रहने की बलवती प्रेरणा दी। प्रताप, हल्दीघाटी, द्मनी आदि का बार-बार पुण्य स्मरण किया, उसे विदेशी लुटेरो के चगुल से क कराने का आव्हान किया गया—

उठ उठ ओ मेरे वदनीय, अभिनंदनीय भारत महान्।
जूझे उठ राजस्थान आज,
हल्दीघाटी के लिये दाप।
पद्मिनी भामिनी का जौहर,
बाप्पा प्रताप का ले प्रताप। (स्व. सुधीन्द्र)

या

अरे ओ जलियाँ वाला बाग, छेड़ कुछ ऐसा विप्लव राग।
चल पड़े सोये हुए शहीद, फिर से ले प्राणों का त्याग।

(सुधीन्द्र)

कवि ने विध्वंस का आह्वान करते हुए, सन् 42 के आन्दोलन के सदर्भ मे गर्जना की —

अग्नि वीणा झनझना दो, आज ताण्डव नृत्य होगा।
हिल उठे हैं प्राण कवि के, आज भीषण कृत्य होगा।
श्वास अब फुंकार फणि के, मृत्यु का आह्वान होगा।
अब न मोहक गीत होंगे, किन्तु भैरव गान होगा।[1]

प्रताप, भामाशाह आदि पूर्वजो के त्याग एव बलिदान पर अहकार करने वाले उन लोगों को कवि ने प्रताड़ित करते हुए उत्साहित किया जो केवल पूर्वजो का स्मरण कर अपने दायित्व की इति श्री समझ लेते हैं। प्रताप के पुत्रों को सम्बोधित करते हुए, उनके सोये उत्साह को ललकारते हुए कवि कहता है—

हे प्रताप के पुत्रों, भामाशा के बेटो,
जीत लिया चित्तौड़ ऐंठकर यों चलते हो।
आज कौन से गौरव पर यह वक्ष फुलाकर,
इन अपनी मोटी मूछों को बल देते हो।
'राणा ने यह किया, वह किया भामाशा ने,
बाबा ने यह जीता, चाचा ने वह मारा।'
यह विरदावलि तो हम पुस्तक में पढ़ लेंगे—
बन पायेगा भी कोई इतिहास तुम्हारा ?
पहले इनकी बदूकें दारु पीती थी,

राजपूत के स्वाभिमान को जागृत करते हुए कवि ने उनके सोये शौर्य और पुरुषार्थ को समझाते हुए कहा—

> जिन गढ़ियों में बेसुध सोते मारवाड़ के पूत।
> पराधीन तुम देश तुम्हारा यों बोले रजपूत।
> अरे कभी क्या उठ कर सोचे अपने पर अधिकार।
> या लटकेगी खूंटी पर ही यह तेरी तलवार।
>
> (अग्निवीणा-सेठिया)

विदेशी आततायी शोषक के कुकृत्यों की चर्चा करते हुए कवि ने तत्कालीन दयनीयता का चित्रण, रोष जागृत करने के विचार से किया—

> बिना अन्न के भूखों मरते, तड़प-तड़प कर लाल हमारे।
> हमें छोड़कर कितनों ने ही, मरघट में जा पांव पसारे।
> सूख गया है तन का शोणित, सूख गया आंखों का पानी।
> इस पंजर में सांस नहीं है, कब आई कब गई जवानी।
>
> (अग्निवीणा-सेठिया)

जब देश ने स्वतन्त्रता की रणभेरी का नाद किया तो उसका स्वर समस्त चराचर प्रकृति में प्रतिध्वनित होने लगा। हिल्लोलित होने वाली विप्लवी चेतना का ओजस्वी चित्रण देखिये—

> बज उठी युद्ध की रणभेरी।
> गंगाजल ने अंगड़ाई ली, उन्मत्त हिमाचल डोल उठा।
> हम हैं स्वतन्त्र, हम हैं स्वतन्त्र, बढ़ विन्ध्याचल बोल उठा।
> विटपों की बिगुल बजी वन में, डालों पर पत्ते खड़क उठे।
> तितलियां उड़ीं, भौंरे भागे, सुमनों के शोले भड़क उठे।
>
> *(राष्ट्रकथा-भरत व्यास)*

स्वतन्त्रता-संग्राम के पावन-क्षणों में कवि अपने दायित्व को पूर्णत. समझा है, इसीलिये वह कुछ नया सृजित करने के लिये व्याकुल हो उठता है। अब तक के अपने लेखन को वह मात्र भूमिका मानता है और राष्ट्रीय-दायित्व के प्रति अपनी लेखनी को सजग करते हुए कहता है—

> ओ सुकोमल लेखनी मेरी, रुको मत गति बढ़ाओ।
> आज तक जो कुछ लिखा, वह भूमिका थी,
> गीत तो मेरे अभी आरम्भ होंगे।
>
> *(राष्ट्रकथा-भरत व्यास)*

वह सतत जागरूक चेतना का जयघोष करते हुए कहता है—

मत कहना अब इस गुलाम वसुधा पर शूर नहीं हैं,
कदम-कदम पर बाधाएं, पर हम मजबूर नहीं हैं।
आगे बढ़े कदम पीछे हटना मंजूर नहीं है।
अमर क्रान्ति के अग्रदूत अब दिल्ली दूर नहीं है।
(राष्ट्रकथा-भरत व्यास)

अपनी कविता-प्रेयसि को सम्बोधित करते हुए कवि कल्पना और यथार्थ के मतद्वन्द तथा सत् पर असत् के जयघोष का स्वर गुंजरित करता है क्योंकि अत्याचारों से पीड़ित उसकी वसुन्धरा सिसक रही है और सभ्यता मूक, किंकर्त्तव्य विमूढ़ है। इसीलिये वह कविता-प्रेयसि को क्रान्ति रूप धारण करने का आव्हान करता है—

स्वप्न-शायिनी जाग, सत्य का आलिंगन रंजन करना है,
फूल कल्पना के बिखेर दे, आग अंक में भर मरना है।
❀ ❀ ❀
सिसक रही चुपचाप धरित्री, अभी सभ्यता मूक, अरचना।
❀ ❀ ❀
तू सूर्य सोम की आंखों से ज्वाला सी बन इतराती आ।
तू बना धरा को रंगमंच, युग-नट के साथ थिरकती आ।
(प्रलयवीणा-सत्येन्द्र)

अलग व्यक्तित्व भी रहे और सौमनस्य भी बना रहे, यही तो लोकतन्त्र की सफलता है। विभाजन के बाद जो साम्प्रदायिक विद्वेष की अग्नि भड़क उठी, उसने कवि को उत्तेजित किया और वह एकता-प्रयत्नों में अपना स्वर मिला कर गाने लगा—

मन्दिर मे घन्टा बजे और मन्दिर मे चले नमाज।
जनतन्त्र की छाया में, ऐसा हो अपना राज।

꙳ ꙳ ꙳

दे दिया तुम्हारे लिये क्या न गाधी ने प्राण शरीर?
उसके लोहू से दिल जोड़े, जो दिये तुम्हीं ने चीर।
मानवता को ही धर्म बना, जी सकता आज समाज।
मन्दिर मे घन्टा बजे और मंदिर मे चले नमाज।
(सुधीन्द्र)

स्वतंत्रता का वरदान हमे जनतंत्र के रूप मे मिला। जनतंत्र अर्थात् जनता का राज, जिसमे जनता ही सर्वोपरि है। उसी जनता का यशोगान करते हुए, जो स्वतंत्र भारत की आत्मा है, कवि ने उसे ही 'भारतमाता' का पर्याय मान लिया। उसे अन्नपूर्णा, विजय-श्री सृष्टि की पुण्य पाडुलिपि, शतरूपा वीर-प्रसविनी आदि अनेक गुणात्मक विशेषणो से विभूषित किया। उसका रूप ऐसा कि प्राणों को निखार दे। ऐकाधिपत्य मिटा तो जैसे धरती उजला गई हो। राष्ट्रीयता के साथ कितनी गहरी सास्कृतिक चेतना इन पक्तियो मे मुखर हुई है—

जय जनता, जय अमर भावना, जय गौरव गाथा।
अन्नपूर्णा, भुवन विजय-श्री, जय भारत माता।
इतिहासो की सृष्टि, सृष्टि की पुण्य पाडुलिपि माँ।
शतरूपा, मानव-महतारी जग-पूजित प्रतिमा।
प्रतियोगिता, सभ्यता, सबला, शत समष्टि सदया।
वीर प्रसविनी सर्वर्णा अबिके विशद विजया।
प्राण यहाँ पर निखर निखर कर, धरती पर उतरे।
पवन मिली सासें गुन गुन कर, कमलों पर उतरे।
सत्ताऐं सब बदली, जन की परिभाषाएं बदलीं।
स्वांग मिटा एकाधिपत्य का, धरा हुई उजली।
(उमंग-मुकुल)

स्वतंत्रता की नई भावना ने, नये सूर्योदय ने, श्रम की महिमा को प्रतिष्ठित किया। देश में निर्माण का महान-यज्ञ प्रारम्भ हुआ और कवि ने श्रम की शक्ति को पहचान कर उसके प्रति जन-सामान्य के आग्रहशील बनाया। वह कलुषित मनोवृत्तियों को त्याग कर, नई सरगम के स्वरों को पहचान कर, स्वेदकणों की महिमा जानने का आग्रह करने लगा। धरती के शृंगार के लिए, भुजबल, हल, कुदाली की शक्ति का मूल्यांकन करने के लिये वह पुकारने लगा—

नये सृजन के लिए उठाओ अपनी बाहें,
नये देश की धरती का शृंगार करो।

❀ ❀ ❀

देखो हल की नोक नया निर्माण कर रही,
देखो आज हथोड़े ने शृंगार किया है,
देखो उठी कुदाली की इस सृजन-शक्ति को,
जिसने जर्जर ढांचे को आधार दिया है।
तट पर खड़े, लहर गिनने से क्या सम्भव है?
साहस हो तो तूफानों को बांध चलो।
मोड़ चलो रफ्तार बाढ़ के इस पानी को
साहस हो तो चलो, आज मझधार चलो।
श्रमचारों की शक्ति, सिर्फ दिखलावे की है,
धन से नहीं पसीने की बूंदों से प्यार करो।
(मैं युगचारण-प्रकाश आतुर)

कवि की कामना रही है कि—

उत्पादन साधन समाज के, श्रम मानव का धन बन जाये।
जो धरती को जोते बोए, वह समाज में गौरव पाये।

❀ ❀ ❀

न धरती हमारी, न धन है हमारा,
अटल एक सम्पति, श्रम है हमारा।

❀ ❀ ❀

फावड़ा, कुदाली वाले हम, लो गढ़ते हैं अब नया देश।
संस्कृति निर्मित करते श्रम की, मानव समाज उठता अशेष।

चल उठी कुदाली लो फिर से, हम पर्वत तोड़ गिराते हैं।
उठ चला फावड़ा हाथों का, भू पर हम गगन झुकाते हैं।
(नवोदय के गीत-डा. दिनेश)

इस देश की मिट्टी की महिमा उसके रोम रोम में रम जाती है और वह देश की धरती के कण-कण को निखारने के लिये तथा उसके कण कण को पावन करने का आग्रह अपनी प्रेयसि से करने लगता है। देश की मिट्टी की पावनता के प्रति उसके मोह का कारण है—

इस मिट्टी में मेरे युग का पावन सपना
इस मिट्टी में सोई है बेहोश बहारें।
इस मिट्टी में सृजन-शक्ति का आदि स्रोत है
इस मिट्टी में मेरे मन की करुण पुकारें।

इस मिट्टी की पावनता को व्यापक कर दो,
मैं समझूंगा तुमने जीवन-ज्योति जलाई।
इस धरती के कण कण को तुम पावन कर दो,
मैं समझूंगा, तुमने मेरी प्रीत निभाई।
(मैं युगचारण-प्रकाश आतुर)

देश की पावन मिट्टी की सौंधी सुगन्ध में कवि का मन रम गया है। कवि को इस बात का विश्वास है कि श्रम की यह बूंद, आबदार मोती बनेगी और व्यस्त-हस्त,रूढ़ि जर्जरित कुहासे को नष्ट कर, नये प्रभात में, देश का नई विधि से शृंगार करेंगे। जो पददलित हैं, उनके माथे, प्रीति का कुंकुम लगेगा और नये शिल्प की मूर्ति, गगनचुंबी शिखर पर चढ़ कर ही रहेगी। उसे विश्वास है—देश का कायाकल्प होकर रहेगा।

है स्वेदकनों से शृंगारित श्रम की देवी
मेरे गीतों की अंजलि तुम्हें समर्पित है।
कपड़ा बुनती,बुनकर की अंगुलियाँ तुम को।
मेरी वाणी की सब रागनियाँ अर्पित है।

❀ ❀ ❀

श्रम को गाते, आशा के तट छूती आओ।
तुम खेतों में फसलों की धुन गाती आओ।
बढ़ते कदमों के लिये मचलती मंजिल सी

गाती रचना के गीत कलों की हलचल सी।
आओ ! सपनों को तुम स्वरूप देती आओ,
मन रोम रोम मीठे सपनों से स्पन्दित है।
(कमलाकर)

करोड़ों के त्याग और बलिदान से जो पुष्प खिले हैं उनकी दुहाई देकर कवि शपथ दिलाता है कि साहसी बनो, उत्साह बढ़ाओ, और मेरी मशाल के उजाले में निरन्तर बढ़ते रहो। देश का शत्रु चाहे कितना ही शक्ति शाली क्यों न हो, उससे भयग्रस्त मत हो क्योंकि जो मशाल जली है, उसके उजाले में कोई सो नहीं सकता, अंधेरा रह नहीं सकता। अतः वह उद्बोधन के स्वर में, कदम से कदम मिला कर चलने की बलवती प्रेरणा देता है—

अभी दो क्षण हुए साथी, उषा ने गान गाया था।
अभी दो पल हुए पंथी, सवेरा मुस्कराया था।
अचानक बादलों ने आ, तिमिर से भुग्यमर डाला।
समझ कर निशि न सो जाना, अभी मैं पथ दिखाता हूं।
नई मंजिल बनाता हूं।

शहीदों के रुधिर में जो, खिले हैं फूल उपवन में।
तुम्हें सौगन्ध है उनकी, न हिम्मत हारना मन में।
गिराने दो इन्हें गोले, चलाने दो इन्हें तोपें,
अंधेरा रह नहीं सकता, मशालें मैं जलाता हूं।
नई मंजिल बनाता हूं।
(जलती रहे मशाल-डा दिनेश)

कवि को अपनी सृजन-क्षमता के प्रति अटूट आस्था है और संघर्ष को ही जीवन मान कर नये इतिहास की रचना के प्रति वह सकल्पित है—

रात काली है सफर भी दूरियों का है,
हाथ मेरा है, रुदन मजबूरियों का है।
आंसुओं के घूंट भी विश्वास पलता है,
हर कदम पहले फिसल कर फिर सम्हलता है।
मैं नये इतिहास का बस एक अक्षर हूं,
है अंधेरा, पर उजाले की डगर पर हूं।
मैं सृजन की सांस हूं, संघर्ष का स्वर हूं।
(धुंआ उड़ रहा है-गंगाराम पथिक)

उपर्युक्त पंक्तियों कवि गंगाराम 'पथिक', इस प्रांत का ओजस्वी गीतकार है। उसने इस भूखे, नंगे देश की थकी हारी जनता को संघर्षरत रहने और आशा का अमर दीप प्रज्ज्वलित कर पथ पर अग्रसर होते रहने की बलवती प्रेरणा दी है। उसमे आक्रोश है पर आस्था का स्वर भी उतना ही सशक्त है। स्वतंत्र देश की मनोव्यथा का सशक्त चित्रण करते हुए कवि ने राष्ट्र की विवशता और घुटन को बड़ी मार्मिक अभिव्यक्ति दी है।

राष्ट्रीयता का एक भिन्न रूप उन कविताओं मे भी देखने को मिलता है जिनमे देश में व्याप्त भ्रष्टाचार को समाप्त कर, देश की आत्मा को निर्मल बनाने का आग्रह किया गया। स्वतंत्रता प्राप्ति के क्षणो में जो स्वप्न सजोये गये थे, उनकी आद्यतन पूर्ति नही हो पाई है। लगभग तीन दशाब्दियों का अन्तराल व्यतीत होने के उपरान्त भी गरीबी, भुखमरी और भ्रष्टाचार का क्षेत्र बढ़ता देख कवि का मन व्यथित हुआ है। स्वार्थी और द्रोही लोग फल-फूल रहे हैं और जन-सामान्य उतना ही दीन बना हुआ है जितना कि वह पहले था। इस स्थिति को कवि ने भली भांति समझा और सशक्त स्वरो मे अवाछनीय तत्वों के मुखौटे उतार फेंकने और देश की निर्मल आत्मा के रूप की छवि-कामना को व्यक्त किया है। शोषण का व्यापार देश के स्वरूप को विकृत एवं आत्माहीन बनाये जा रहा है। भला कवि इस प्रकार की अराष्ट्रीय हरकतों को कैसे सहन कर सकता ? वह अपने दायित्व की गरिमा का निर्वाह करने की दृष्टि से असामाजिकता के समक्ष, प्रतिरोध करने के लिये प्रतिबद्ध बना, कटिबद्ध खड़ा है—

> महनतकश भूखो मरते है, मौज लुटेरे करते हैं।
> लक्ष्मीवाहन नई सुबह के, उजियारे से डरते हैं।
> यह ऋषियों का देश, घुली है भंग यहां के पानी मे।
> भरमो का मनहूस बुढ़ापा, मिलता भरी जवानी मे।
> धन दौलत में बिकने वाली, दुनिया चोर बजारों की।
> देख सम्हल के चलना भय्या, बस्ती है बटमारो की।[1]
>
> *इतिहास बदलने के मौसम में भी देखो,*
> *नीरो के वंशज मुरली मधुर बजाते हैं।*
> *लेकिन भूखे नंगे लोगों की बस्ती में,*
> *सपने, शरमाने से पहले लुट जाते हैं।*
>
> ❀ ❀ ❀
>
> कानून नहीं, कानून किराये का घर है।
> आतंक, लूट, इल्जाम जहां पर बसते हैं।

[1] ... रहा है' में गंगाराम 'पथिक' व रणजीत की संयुक्त कविता, पृ. 55

उजड़ा-उजड़ा ईमान भटकता फिरता है,
रोटी महंगी, इन्सान बहुत ही सस्ते हैं।[1]

देखा तो पग-पग पर भ्रष्टाचार है,
नव-निर्मित भवनों में पड़ी दरार है।
फुलझड़ियों से बांध बिखरते जा रहे,
बने बकासुर, जनता का धन खा रहे।

❀ ❀ ❀

हर भ्रष्टाचारी का पर्दाफाश हो,
देशद्रोह का मेरे घर से नाश हो।
पूरा होगा, यज्ञ नये निर्माण का,
इन्सानों में प्यार जगे इन्सान का।[2]

बहुत शुक्रगुजार हूं तेरा, ए मेरे वतन कि अभी तक मैं,
भूखा न मरा, पागल न हुआ, जकड़ा न गया हथकड़ियों में।[3]
यह है अपनी दिल्ली, जो सब शहरों की महारानी है।
शासन मद में मस्त झूमती, वैभव की दीवानी है।
शोषण और जब्र की रस्में, इसकी बहुत पुरानी हैं।
बदल गये मालिक लेकिन फिर भी वही गुलामी है।[4]

पिंजरा खुला, खुले सब बन्धन, फिर भी पंछी चहक न पाया।
उजड़ा जंगल खिला मुदित मन, लेकिन उपवन महक न पाया।
पंख न अब तक खुले विहग के, महक न फूलों में है आई।
कल्पित दुनिया हुई न पूरी, जो सपनों में कभी बनाई।[5]

तुम्हीं बताओ, कैसे आज बसंत मनाऊं?
रोता सारा देश घोर में गीत सुनाऊं?

❀ ❀ ❀

मरण यज्ञ की आहुति बन कर जलती आशा,
बहरों का है देश, मूक है युग की भाषा।

---

1. घुमड़ रहा है गंगाराम 'पथिक', पृ. 61
2. रक्त-दीप-ले. गणपतिचन्द्र भण्डारी, पृ 57
3. ये सपने ये प्रेत-ले. रणबीर. पृ 110
4. ये सपने ये प्रेत-ले. सणजीत. पृ. 107
5. मैं धूप चारण-ले. प्रकाश आतुर।

एक बार चोट खाई सम्भावना। बता गई। आदमी मे जीवित है अभी पशु। और उसके लिये। गोली की जरूरत है, कवच की जरूरत है। रक्षा के लिये नहीं। आदमी के भीतर जागे विकृत पशुता के लिये।[1]

चीनी आक्रमण के संदर्भ मे रचित नन्द चतुर्वेदी की दो कवितायें—'अन्धे परवाहों' तथा 'आह ह्वेसांग', बहुत चर्चित रही हैं और भारत की अनेक भाषाओं में इनके अनुवाद भी प्रकाशित हुए हैं। मध्य-युग में ह्वेसांग, चीनी यात्री के रूप में भारत आया था और उसने भारतीय संस्कृति और व्यवस्था की मुक्त कंठ से प्रशंसा की थी। कवि ने उस यात्री को सम्बोधित करते हुए भारतीय प्रतिक्रिया और आक्रोश को सशक्त अभिव्यक्ति दी है। कवि ने स्पष्ट कहा है कि भारत युद्ध से नहीं डरता किन्तु जो घृणा फैल रही है, वह इतिहास के द्वार पर फन पटकने वाली घायल सर्पिणी है, जिसने भारतीय-जन को शस्त्र उठाने के लिये विवश कर दिया है—

> हिन्दुस्तान ने युद्ध लड़े हैं ह्वेसांग
> किन्तु वे युद्ध ही थे
> अब युद्ध और घृणा दोनों हैं
> युद्ध याद नहीं रहते
> किन्तु घृणा घायल सर्प है
> जो इतिहास के द्वार पर बार-बार फन पटकता है
> और जनता शस्त्र उठाती है।

इसी कविता में कवि ने आक्रमण के फलस्वरूप जनमानस में जिस चेतना का स्फुरण हुआ है उसका मनोवैज्ञानिक एवं प्रतीकात्मक चित्र प्रस्तुत किया है। युवक, युवतियाँ, वृद्धजन अचानक ही व्यवहार बदल बैठे हैं और बुद्ध को नमन करने वाला देश हिंसा के लिये तैयार हो गया है, क्योंकि उसके विश्वास और आस्था के साथ छल किया गया है—

> घृणा विष है और वह फैल रहा है
> युवक इन दिनों प्रेम, शृंगार, युवतियों की बातें नहीं करते,
> वृद्ध तेज चलते हैं तीखे बोलते हैं
> और अकारण ही छड़ियाँ घुमाते हैं
> युवतियाँ कुछ भिन्न प्रकार के जूड़े कसती हैं

1. वही मनमोहिनी की कविता, पृ. 27

जनता अपनी सर्वोच्चता, स्वाधीनता, [illegible] की भावना
मुट्ठी भर [illegible] करती है
आज युद्ध का ललकार भी करता है
पर बहुत पहाड़ों की दीवार [illegible] है
क्योंकि वे [illegible] हैं ।[1]

कवि की दूसरी कविता 'अपने चरवाहो' की व्यंजक योजना बड़ी सशक्त है । शत्रु को उसने 'अपना चरवाहा' कहा है जो अपनी भेड़ों को, बजाय दूसरों के इलाकों पर भेजकर सीमा का अतिक्रमण कर रहा है । लेकिन कवि सावधान है—

'अपने चरवाहो/अपनी इन भेड़ों को/दूसरों के इलाकों पर जाने से रोको/अब वैसे दिन नहीं/सूरज है सब कहीं/चाहे हो तुम/जो दूसरा की सीमा में/उगते हुए सूरज की रोशनी को ओढ़ो/मेरे चरागाहों में/तुम पर जानते हैं जिना दूसरे पर मैं/तीसरे पर मेरा सूर्य सा पुत्र/इसीलिये कहता हूं । अपनी इन भेड़ों को मोड़ लो/अपने वहीं दूसरे पहाड़ों पर पालो ।'[2]

राजस्थान के ओजस्वी कवि मुकुल ने चीनी आक्रमण के सदर्भ मे अनेक सशक्त रचनायें प्रस्तुत की है । कवि की ओजस्विता अनेक रूपों मे व्यंजित हुई है । एक सैनिक की प्रियतमा, जिन शब्दो मे युद्ध प्रयाण के निमित्त प्रियतम से आग्रह करती है, वह इस मरुधरा के इतिहास की गौरवमयी परम्परा के अनुकूल है । हाडा रानी के त्याग को आधार बना कर कवि ने वर्षों पूर्व 'सेनानी' की रचना की थी । उसमे एक वीरागना का जो रूप उभरा था, उसी से मिलती-जुलती छवि कवि के उस गीत मे मिलती है जिसमें कि एक सैनिक की प्रियतमा अपने प्रियतम से सकट के क्षरण, मिलन-यामिनी को विस्मृत कर शत्रु-सहार के लिये प्रस्थान करने की प्रेरणा देती है । उसके रजत-किरीट हिमालय पर फैली ज्योत्स्ना उदास है क्योंकि सीमा के प्रहरी पर शत्रु की दृष्टि गडी हुई है । वह अपने प्रिय को अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित कर, रक्त-कुकुम से अभिषेक कर, मातृभूमि की शपथ दिला कर वचन लेती है कि शत्रु से पूरा प्रतिकार लेना और यदि उसका प्रियतम मातृभूमि के लिये अपने प्राण न्यौछावर कर देगा तो वह अपने जीवन को धन्य समझेगी । ऐसी उदात्त भावना त्याग एव शौर्य का ऐसा अनुपम उदाहरण रण-बाँकुरो की धरती राजस्थान ही दे सकती है—

1. 'लहर' नवम्बर, 62 मे प्रकाशित नद चतुर्वेदी की कविता, आह ! हेंसाग ।
2. लेखनी के शस्त्र (स, प्रकाश आतुर, शान्ति भारद्वाज), पृ 20 पर नद चतुर्वेदी की कविता

आज हिमगिरि के ललाट पर चाँद की छाई उदासी,
आज सीमा पर लगी है शत्रु की आँखें पिपासी।
प्रिय यही क्षण है मिलन की यामिनी को तुम बिसारो,
लो विदा, मुझ से, बढ़ो, आगे कुचाली शत्रु मारो।
पास आओ, वस्त्र, शस्त्रों से तुम्हारा तन सजाऊँ,
प्रिय तुम्हारे भाल पर मैं रक्त की रोली लगाऊँ।
लो प्रिये भारत मही की आन तुमको दे रही हूँ,
और तुमसे प्यार के बदले यही प्रण ले रही हूँ।

❀ ❀ ❀

खून देगा गोलियों से शत्रु को धरती न देना।
खून का बदला प्रिय तुम खून से ही आज लेना।

❀ ❀ ❀

धन्य होऊँगी अगर तुम घाव से निज तन सजाये।
ले विजय श्री साथ अपनी देहरी पर लौट आये।
और यदि संयोगवश तुमको वहाँ मरना पड़े तो–
धन्य होऊँगी यही सुन देश के तुम काम आये।[1]

युद्ध के आपद-धर्म का स्मरण करते हुए कवि ने आक्रान्ता को चेतावनी देते हुए सांस्कृतिक सम्बन्धों का स्मरण कराते हुए युद्ध को मानव के सुखमय भविष्य का अभिशाप मानते हुए लौट जाने का आग्रह किया है। देश की सीमा उनके लिये लक्ष्मण रेखा है जिसकी परिधि में आजादी की सीता सुरक्षित है। यदि आक्रान्ता रावण ने उसे हरण करने की चेष्टा की तो रक्तपात की विभीषिका को अस्वीकारना हमारे लिए सम्भव नहीं होगा। इसीलिये कवि इस वसुंधरा की रज को माथे पर लगाकर शपथ लेता है कि रक्त की अन्तिम बूंद शेष रहने तक वह माँ की लाज की रक्षा करेगा।[2]

डा. रामगोपाल 'दिनेश' ने इस संदर्भ में, अपने ओजस्वी गीतों में भारतीय जनमानस की अपराजेय आत्मा के चित्र को उभारा है और भारतीय इतिहास के शौर्य एवं पराक्रम की पुनरावृत्ति करने का आह्वान किया है। भारतवासियों की विशेषता यह है कि वे मेघ भी बन सकते हैं और अंगारा भी, गीत भी गा सकते हैं

1. अनुगूंज–ले. मेघराज 'मुकुल', पृ. 39
2. अनुगूंज–ले. मेघराज 'मुकुल', पृ. 20, 27

और प्रलय-राग भी । हम उन महान् पुरुषों की सन्तान हैं जिनकी देह से वज्र बना है अथवा जो गंगा को अपने पुरुषार्थ से धरती पर उतार लाये हैं । हम से जिसने जैसा व्यवहार किया, हमने उसी रूप में उसे प्रति दान दिया है—

हम मेघ, हमें जीवन प्यारा, पर आग बिछा भी सकते हैं ।
रस गीत न तुमको भाता तो, गा, प्रलय-राग भी सकते हैं ।
हम उस दधीचि के बेटे हैं, शायद तुमको यह याद नहीं ।
जिसकी हड्डी से वज्र बना, मिलता ऐसा फौलाद नहीं ।

꧁ ꧁ ꧁

हमसे लड़ने को काल चला, तो नभ-निचोड़ गंगा लाये ।
सागर गर्जा तो बन अगस्त्य, उसके ज्वारों को पी आये ।
भूचाल हमारे पैरों में, तूफान बन्द है मुट्ठी में—
हम शंकर हैं, तू चाहे तो ताण्डव भी दिखला सकते हैं ।[1]

ललित गीतकार ज्ञान-भारिल्ल यद्यपि मूलतः सुकुमार स्वप्नों के कवि हैं किन्तु उनका स्वर जिस तीव्रता से बदला है, वह विद्रोही आत्मा की चीत्कार का स्वर है । अपने गीतकार को आपद्धर्म का स्मरण कराते हुए कवि ने अपनी स्वर लहरी को अग्नि-राग में परिवर्तित कर देने का आह्वान किया है । माँ शारदे से वह वरदान की याचना करता है कि इस संकट की बेला में उसके प्राणों पर ऐसा राग और रस बिखरा दे, जिससे उसका कवि मृत्युंजय बन जाये । उसका धैर्य अब विचलित हो रहा है अतः वह ऐसे अग्नि-स्पर्श की कामना करता है जो सूर्य को भी जला दे—

माँ शारदे ! भवानी बन जा, आशीर्वाद मुझे दे,
मेरी कलम शत्रु के सिर पर असि बन कर तन जाये ।
मेरे गीतों की स्वर-लहरी, अग्नि राग बन जाये ।

꧁ ꧁ ꧁

यह संगर की बेला, इस में शान्त नहीं बैठूंगा
माँ कुछ ऐसा राग और रस, प्राणों पर बिखरा तू
मेरा गीतकार जिससे मैं मृत्युंजय बन जाये ।

1. लेखनी के स्वर-(स. प्रकाश आतुर, शांति भारद्वाज) में डा. दिनेश का गीत, पृ. 63

बहुत धैर्य रखा माँ, लेकिन अब तो मिली चुनौती
अब तो दे वरदान, प्राण में ऐसी शक्ति समा दे
जिसे स्पर्श कर अग्नि-देह यह सूरज भी जल जाये ।

❀ ❀ ❀

गीतकार, नगारे वाले गीत सुना ।
गीतकार, तूफानों के साथ में गा ।
माँ शारदा, भवानी बन कर आई है,
गीतकार, माँ को लोहू का तिलक लगा ।[1]

चीनी आक्रमण के समय भारत की दृढ़ता, अटूट एवं अटल निश्चय तथा जन-सामान्य की जागरूक प्रतिक्रिया का चित्रण प्रकाश आतुर की निम्न पंक्तियों में हुआ है —

उनको शायद मालूम नहीं, भारत क्या है ?
मेरे भारत का हर बच्चा अंगारा है ।
मेरे भारत की हर युवती चामुण्डा है
मेरे भारत का हर निश्चय ध्रुव तारा है ।
मेरे भारत का क्रोध उन्हें मालूम नहीं,
मेरे भारत की मिट्टी सब गरमाई है ।
जो रहा हिमालय, शान्ति, प्रेम का चिर-गढ़
उस भारत ने भी यह बन्दूक उठाई है ।[2]

अथवा

खून के धारों से लिखी है कसम, पर बन्दर आज सरहद नहीं फांदेंगे ।
जिन्दगी के चार फूल अर्पित किये, यह कुर्बानी न बेकार नहीं जायेगी ।
आज चौराहों पर लुटी कलियाँ और ओढ़े कफन पर अभिमान है ।
है बदन में चरम लाज शहीदों की, आज तो कोई भी बात अपमान है ।

1. बिजली के गान—(सं. प्रकाश आतुर, शान्ति भटनागर) में डा. दिनेश का गीत, पृ. 41
. के जन-जागरण विभाग द्वारा प्रकाशित प्रकाश आतुर की

चीन की भीत ने वार पहला किया, अब हिमालय समझ ले कि सग्राम है।
आज सबने वतन का लिया नाम है, फिर वतन ने तिरगा लिया थाम है।
खून कितना तिरंगा तुझे चाहिये, देश की धमनियो मे उठा ज्वार है।
मुल्क पूरा सिपाही बना हाथ मे मुण्ड है, दूसरे हाथ तलवार है।
बूट तूफान के, टोपियाँ आन की, द टिकट काट बदूक शमशान की।
उफ कि जलने लगी है बरफ आज तो, एक बाजी लगी जानकी, शान की।
हाथ सबके मगर एक ही है कलम, आज इतिहास लिखना सरल काम है।
आज सबने वतन का लिया नाम है, फिर वतन ने तिरगा लिया थाम है।[1]

दार्शनिक गीतकार कन्हैयालाल सेठिया की, चीनी आक्रमण के दौरान, 'जादूगर माओ', 'चीन की ललकार', 'रक्त दो' आदि छोटी-छोटी प्रेरणाप्रद पुस्तिकाएं प्रकाशित हुई जिनमे कवि ने आक्राता की चुनौती को स्वीकारते हुए साहस के साथ उसका मुकाबला करने की प्रेरणा दी है। कवि की स्पष्ट मान्यता रही है कि, 'स्कन्दगुप्त से मात खाने के बाद, भारतीय इतिहास मे यह दूसरा अवसर आया है जबकि लुटेरे हूण अपनी प्रसारवादी अनीति की पुनरावृत्ति करने का प्रचण्ड प्रयास कर रहे है।'[2] सेठिया ने दार्शनिक मुद्रा को त्याग कर सक्रमण काल मे उठने, आगे बढ़ने और स्नेहशीला जननी के पयामृत का मोल चुकाने का आह्वान अपने छोटे-छोटे गीतो में किया है। सेठिया सरीखे गम्भीर एव दार्शनिक चितन मे लीन कवि ने भी स्वर को अग्निमय बना कर, वस्तुत राजस्थान के कवि की बदलती, समयोचित मुद्रा को ही अभिव्यक्ति दी है। इसी प्रकार डॉ कन्हैयालाल सहल के छोटे-छोटे मुक्तको मे प्रतिरोध का स्वर मुखर हुआ है। कवि का विश्वास है कि चाहे दीपक फूंक मात्र से बुझ जाय किन्तु सूर्य की ज्योति-रोशनी, झझावातो म भी बुझ पाना असम्भव है।[3] राजकुमारी कौल ने भी विपदा बेला मे अपने तेवर बदले है और हिंसा के दूतो को सावधान करते हुए चुनौती भरे स्वर मे शत्रु को ललकारा है।[4]

---

1. लेखनी के शस्त्र (स. प्रकाश मातुर, शांति भारद्वाज) मे जगदीश चतुर्वेदी की कविता, पृ. 61
2. 'चीन की ललकार' (ले. कन्हैयालाल सेठिया) की भूमिका।
3. 'नई किरण छू गई देश को' शीर्षक कविता।
4. आक्रमणो अपनी झूठी ताकत पो पातक, इस ओर जगा है
पौरुष का वीर नाग।
तोपों की परवाह नहीं, सीना फौलादी है, तुमको कर देगी भस्म, सत्य की क्रुद्ध आग। (राजकुमारी कौल—लेखनी के शस्त्र, पृ. 33)

कोटा के बशीर अहमद 'मयूख' ने, स्व. बालकृष्ण नवीन की ही भांति कवि को कुछ ऐसी तान सुनाने के लिये कहा है, जिसे सुन कर घर-घर में रणभेरी का जयनाद गुंजरित होने लगे। कवि की कामना है कि उसकी तान में कुछ ऐसा विप्लवी-स्वर हो जिससे कि पनघट की राधा के नूपुर, रणभेरी में परिवर्तित हो जायें। वृन्दावनी बंशी के स्वरों में शंकर के डमरु का स्वर भर जाये और ग्वाल-बाल आर्य-रुद्र के आह्वान का रास रचाने लगें। पंचशील के नाम पर कायरता का पृष्ठ जोड़ने में उसे घोर आपत्ति है और अतीत के इतिहास से वह प्रेरित होता है। मयूख ने पूरे सांस्कृतिक-परिवेश में अपनी राष्ट्रीय चेतना को ओजस्वी स्वरों में मुखर किया है—

नहीं नहायेगी चाँदनियां निर्वसना नीले अम्बर में,
राह न देखे कोई राधा, सांवरिया की किसी डगर में,
मत भनका रे किसी उर्वशी की पायल के घायल से स्वर,
कवि कुछ ऐसी तान सुना दे, गूंज उठे रणभेरी घर-घर।

❀ ❀ ❀

भंग न कर पायेगी तप को आज मेनका पंचशील की।
फौलादी गोलियां बनेंगी अब सांचे की कील-कील की।
सेनों में बारुद उगाने निकल पड़ा है मेरा हल धर।

❀ ❀ ❀

पनघट की राधा के नूपुर रणभेरी में परिवर्तित कर।
वृन्दावन की बंशी के स्वर, शिव-शंकर के डमरू में भर।
आज रुद्र के आह्वान का रास रचाने ग्वाल-बाल जन।
रंग दे रहे तान तांडवी प्रलयंकर का खुला त्रिलोचन।

❀ ❀ ❀

पंचशील के कबूतरों को दाना चुग कर मत उड़ने दो।
विश्व शांति की परिभाषा में कायरता को मत जुड़ने दो।
तेरे स्वर पर समाधियों से निकल पड़ेंगे टीपू नाना।
निकलेगी झांसी की रानी, निकलेगी रजिया सुल्ताना।

❀ ❀ ❀

पृथ्वीराज लड़ेगा लेकिन साथ-साथ कवि चन्द लड़ेगा।
[illegible]

हल्दीघाटी में उड़-उड़ कर, दुश्मनों की धूल उड़ेगी ।
धनुष का हर मोड़ लड़ेगा, दुर्योधन की भूल लड़ेगी ।[1]

हिमालय की शीतलता में अग्नि छिपी है और बर्फ के नीचे ज्वालामुखी छिपा हुआ है, उसे विजय करना सरल नहीं है । आनन्द कश्यप का कहना है कि यदि हम भारतवासी दुश्मन के लिये शूल हैं तो मित्रों के लिये 'मधुवन हैं, गुलदस्ते हैं।' करोड़ों देशवासियों का स्वप्न-सागर टीला बन चुका है । अब वह दर्द से ठंडा नहीं है—

गर्व जैसे स्वर्ग की केंचुल उतारे, आवरण तलवार अब तजने लगी है ।
ध्यान जो शहनाइयों में गूंजती थी, आज सहसा शंख में बजने लगी है ।
दर्द का यह घाव जो मन पर लगा है, सुर्ख है अंगार सा नीला नहीं है ।
लो बता दो शांति का शीतल हिमालय, आग है अब बर्फ का टीला नहीं है ।[2]

सीमा पर तैनात भारतीय प्रहरी का अभिनन्दन करते हुए ताराप्रकाश जोशी ने अपने काव्य के माध्यम से उसे अपना सलाम भेजा है । कवि की दृष्टि में, सीमा का प्रहरी, बच्चों की खुशियों, आशाओं तथा बहिनों की राखी के धागे की पवित्रता का रक्षक है । भारत की सीमा के प्रहरी को सुहाग सिन्दूर, भुजाओं की क्षमता, मां की ममता, साम्प्रदायिक सौमनस्य और विभिन्न सभ्यताओं और संस्कृतियों की ओर से कवि नमस्कार करता है क्योंकि वह देश की सीमा और स्वतन्त्रता का प्रहरी है—

कोटि-कोटि बच्चों की खुशियों आशाओं से,
इस सलाम को भेज रहा हूं आज सजाकर ।
कोटि-कोटि बहिनों की राखी के धागों से,
इस सलाम को भेज रहा हूं आज पिरो कर ।
इस सलाम में सेंदूर है सबके सुहाग का,
इस सलाम में सभी भुजाओं की है क्षमता ।
इस सलाम में चंदन है सब आशीषों का,
इस सलाम में भेज रहा हूं मां की ममता ।

---

1. लेखनी के शस्त्र (स. प्रकाश आतुर, शान्ति भारद्वाज, प्रकाशक—राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर) में मधुप की कविता 'गूंज उठे रणभेरी', पृ. 23-24
2. लेखनी के शस्त्र, आनन्द कश्यप का गीत, पृ. 10

यह सलाम है मन्दिर, मस्जिद का, गिरजे का,
यह सलाम गीता, बाइबिल का, कुरान का ।
यह सलाम है ग्रन्थ साहब का, गुरुद्वारे का,
यह सलाम है हर पूजा का, हर अजान का ।

❀ ❀ ❀

इस सलाम की कसम उठाओ ऐ नरसिंहो,
आजादी को कभी नहीं तुम लुटने दोगे ।
साथ तुम्हारे भारत का यह जनगण मन है,
इसका गौरव कभी नहीं तुम मिटने दोगे ।[1]

अजमेर के प्रकाश जैन की मिट्टी की सौगन्ध दिलाते हुए आक्रान्ता की चुनौती को स्वीकार करने का आग्रह किया है[2] और भारतरत्न भार्गव का मन, बलिदानों की धरती पर खूँटा गाड़ने वाले शत्रु के प्रति निर्मम हो उठता है। वह आक्रान्ता के खूनी पंजे मरोड़ देने के लिये पुकार उठता है।[3] गणपतिचन्द्र भण्डारी भारत के शानदार गौरव का गुणगान करते हुए इस देश की पुनीत बलिदानी परम्परा की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए चेतावनी देते हैं[4] और गंगाराम पथिक संकट-काल में साहस और स्वाभिमान को बनाये रखने की प्रेरणा देते हैं।[5] मगर सक्सेना को जन्मभूमि की धरती का स्वभाव विदित है और इसीलिये उसे यह सम्भव प्रतीत नहीं होता कि साँप की फुफकार से हम डर जायें अथवा हिमालय विचलित होकर राह दे दे, या हमारी आस्था खण्डित हो जाय। कवि को इस देश की सत्य, शिव, सुन्दरम की परम्परा और भारतीय संस्कृति के मूल तत्वों पर गर्व है। यह अस्तित्व की भावना को यदि शत्रु हमारी दुर्बलता समझता है तो यह उसकी भूल है। कुछ बौराये हुए जनखोरों की आक्रामक नीति से भी हमारी आस्था खण्डित होने वाली नहीं है—

अगर कुछ लोग बौराये, लिये बारूद चढ़ आये।
नहीं समझो क्षमा हारी, अगर कुछ धूर्त बढ़ आये।

---

1. लेखनी के अस्त्र, ताराप्रकाश का गीत, 'भारतीय सैनिकों के नाम', पृ. 18
2. वही, प्रकाश जैन की कविता, पृ. 22-23
3. वही, भारतरत्न भार्गव की कविता, पृ. 25-26
4. वही, गणपतिचन्द्र भंडारी की कविता, पृ. 64
5. वही, गंगाराम पथिक का गीत, पृ 17

इसी स्वाभिमान की रक्षा के लिये राजस्थान का साहित्यकर्मी सतर्क रहा है। इन कवियों के अतिरिक्त प्रान्त के अनेक कवियों ने भी अपनी लेखनी के शस्त्र का प्रयोग किया है। अकिंचन शर्मा,[1] उमादत्त दुबे अनजान,[2] कमला जैन,[3] रणजीत,[4] शान्ति भारद्वाज 'राकेश',[5] अरुण,[6] हरिराम आचार्य,[7] उस्ताद,[8] त्रिलोक गोयल,[9] रघुराजसिंह हाडा,[10] मुमनेश जोशी,[11] निरंजननाथ आचार्य[12] आदि कवियों ने भी इस सदर्भ से सम्बन्धित सशक्त काव्य-रचना की है। डा रामगोपाल 'दिनेश' का 'हिमप्रिया' शीर्षक से एक काव्य-संकलन इसी सदर्भ मे प्रकाशित हुआ है। राजस्थान साहित्य अकादमी द्वारा इन पंक्तियो के लेखक व शांति भारद्वाज के सम्पादन मे प्रान्त के हिन्दी कवियो का काव्य-संकलन 'लेखनी के शस्त्र' तथा उस्मानी के सम्पादन मे उर्दू कवियो का काव्य-संकलन 'कलम की तलवारें' प्रकाशित किया है। पश्चिमी रेल्वे की अजमेर शाखा ने मंगल सक्सेना और अकिंचन शर्मा की 16 कविताओ का लघु संकलन 'कपट का सीना फाडो रे' शीर्षक से प्रकाशित किया है। भारतेन्दु समिति कोटा ने गजेन्द्र सोलंकी के सम्पादकत्व मे हाडोती क्षेत्र के 57 कवियों का काव्य-संकलन 'हाडोती आंचल का विजय घोष' तथा मरिता बीकानेर की ओर से बीकानेर क्षेत्र के 67 कवियो का काव्य-संकलन 'विजय हमारी' शीर्षक से प्रकाशित किया है।

चीनी आक्रमण के सदर्भ में रचित राजस्थान के कवियों के काव्य मे चाहे कलात्मकता उच्च कोटि की न भी हो किन्तु उसमें जो स्वर मुखरित एव भाव व्यक्त हुआ है, वह जन-मन के उत्साह, आक्रोश, दृढ़ संकल्प और अपराजेय पौरुष का प्रतीक है। वैसे इनका काव्य-शिल्प भी स्तरहीन ही नहीं कहा जा सकता। ये रचनायें निश्चित रूप से परिवेश के प्रति सजगता की परिचायक है और सिद्ध

1. लेखनी के शस्त्र, अकिंचन शर्मा का गीत, पृ 9
2. वही, उमादत्त दुबे अनजान की कविता, पृ. 12
3. वही, कमला जैन 'दीदी' की कविता, पृ. 16
4. वही, रणजीत की कविता, पृ. 32
5. वही, शान्ति भारद्वाज की लम्बी कविता, पृ. 36
6. वही, डॉ. अरुण का गीत, पृ. 39
7. वही, हरिराम आचार्य का गीत, पृ. 40
8. वही, उस्ताद की कविता, पृ 43
9. वही, त्रिलोक गोयल की कविता, पृ. 44
10. वही, रघुराजसिंह हाडा की कविता, पृ. 46
11. वही, मुमनेश जोशी की कविता, पृ. 67
12. वही, निरंजननाथ आचार्य की कविता, पृ. 75

करती है कि आज के कवि ने कवि-कर्म की महत्ता को सन्दर्भ में नहीं देखा है। निःसंदेह राजस्थान के कवि की वाणी, शक्ति, साहस, पौरुष, संकल्प और साहस का स्वर समोये हुए है।

दायित्व बोध का ऐसा ही एक उदाहरण राजस्थान के कवियों ने उस समय दिया जब बंगला-देश का मुक्ति संग्राम प्रारम्भ हुआ। हमारा देश उस मुक्ति संग्राम में अपने ढंग से अपना योगदान दे रहा था। बंगलादेश की पीड़ा, सारी मानवता की पीड़ा थी और इसीलिये पाकिस्तानी फौजी तानाशाही के विरुद्ध राजस्थान के कवि ने भी अपनी लेखनी उठाई। इस सन्दर्भ में राजस्थान लेखक संघ, जोधपुर द्वारा प्रकाशित तथा डॉ. मदन डागा द्वारा सम्पादित कृति 'अजानी सलीबों पर' उल्लेखनीय है, जिसमें राजस्थान के छत्तीस कवियों की कविताएँ संकलित हैं। यह संग्रह इस प्रदेश के कवियों की 'ऐतिहासिक' जागरूकता का ही दस्तावेज नहीं, बल्कि इस आस्था का घोषणा-पत्र भी है कि मानव के मुक्ति संघर्ष में कविता के द्वारा भी योग दिया जा सकता है।'[1] इसकी भूमिका में डॉ. नामवरसिंह ने ठीक ही कहा है कि थोड़ी सी तात्कालिक चर्चा के बाद शायद ये कविताएँ इतिहास की धूल में दब ही जायें। फिर भी कवियों ने अपने वक्त की सलीबों निछावर की हैं तो इसलिये कि उन्हें घर के सामने से मानव-मुक्ति का इतिहास गुजरता हुआ दिखाई पड़ा है और ऐसे शुभ क्षण में मुख्य प्रश्न अपनी दृष्टि में अपने आपको सार्थक करने का है—अपने आपको यह अहसास कराने का है कि अन्दर छिपी हुई मुक्ति की चिंगारी अभी बुझी नहीं है। मेरी समझ में इन कविताओं की सार्थकता यही है, बंगला जाति के लिये उतनी नहीं, जितनी अपने लिये...... मुझे यह देख कर खुशी हुई कि इस संग्रह के कुछ जागरूक कवि, कविता को 'नपुंसक आक्रोश' और 'क्रियाहीन सहानुभूति' से ऊपर मानते हैं और ऐसे ही वर्जनामुक्त मन से उन्होंने कविताएँ लिखी भी हैं।[2] इस संकलन से कितनी आय हुई वह बंगला देश सहायता कोष को अर्पित कर दी गई।

डॉ. नामवरसिंह ने 'नपुंसक', 'आक्रोश' और 'क्रियाहीन सहानुभूति' शब्द जिस कविता से लिये हैं, उसके कुछ अंश प्रस्तुत हैं—

'धूप के टापू/मरी मछलियों की गंध से मर गये हैं/शस्यश्यामल ढाका के मलमल/लहूलुहान हो गई है/अंगूठी से निकल जाने वाला थान/संगीन की नोंक से/कदपीस के टुकड़ों में बिखर गया है/भीड़ में नारे उछाल कर/कुछ मसखरे, हाथी दाँत के दरवाजों में बन्द हो गये हैं/बंगला देश की द्रौपदी को/प्रतिशोध के

1. अजानी सलीबों पर (सं डा मदन डागा) में डा नामवरसिंह का प्राक्कथन।
2. वही,

चौसर पर लिथड़ता लेखक/सब चुप हैं/सिर्फ होंठ हिलते हैं/कूटनीति का मुखौटा धारण कर/पर्वपूर्ण चुप्पी साध ली है/भूगोल की सभी दिशाओं ने/जनतन्त्र के अन्तर्राष्ट्रीय पहरुए, चौकसी करते हैं/बलात्कार को/नापाक बमों की/हम सब/तालियाँ बजाते हैं/या/रेडियो सुनते हैं/तमाशबीनी नपुंसक आक्रोश और/क्रियाहीन सहानुभूति की अर्थहीन लहरें/अन्धी बन्द गली में जाकर टूट जाती है/इतिहास उन्हें क्षमा नहीं करता/जो समय को सलीब पर टाँग देते हैं।'[1]

दायित्व-बोध का एक उदाहरण और। राजस्थान में जब भयकर सूखा और अकाल पड़ा तब उसकी ज्वाला में राजस्थान की धरती झुलस कर रह गई। इस विकट संकट की घड़ी में राजस्थान के प्रतिबद्ध साहित्यकर्मियों ने जिस दायित्व बोध का परिचय दिया वह उल्लेखनीय है। अकाल स्थिति की घोषणा होते ही धनपति कुबेरों की थैलियाँ बाद में खुली, सर्वप्रथम राजस्थान के कवियों ने सारे प्रान्त की यात्रा कर यहाँ के जन-मानस को अकाल की विभीषिका के प्रति सतर्क किया और लगभग डेढ़ लाख रुपया अकाल-कोष के निमित्त एकत्रित किया। कवि ताराप्रकाश जोशी के नेतृत्व में वीर सक्सेना, हरिराम आचार्य, छोटू खाँ निर्मल, चन्द्रकुमार 'सुकुमार', मिलापचन्द 'राही', भारतरत्न भार्गव आदि कवियों ने कवि-सम्मेलनों के माध्यम से न केवल धनराशि एकत्रित की अपितु प्रान्त की चेतना को कर्तव्य के प्रति प्रेरित भी किया। एकत्रित धनराशि का मूल्य बहुत अधिक नहीं है लेकिन इससे यह सत्य उद्घाटित होता है कि राजस्थान का साहित्यकर्मी, जिंदगी को महज महफिली अन्दाज में न देख कर गहरे दायित्व-बोध के साथ देखता है। अकाल-संदर्भ में रचित काव्य जहाँ एक ओर स्थिति के यथार्थ चित्र को उभार कर संवेदनशील बनाता है, वहाँ समाधान के लिये प्रेरित भी करता है—

सूनी सूनी चौपालें हैं, गाव-गाव वीरान हैं।
दुर्भिक्षों के दावानल में, जलता राजस्थान है।
टूटी देहरी, फूटा आँगन, हर कुटिया लाचार है।
रीते बर्तन, भूखा पाहुन, बेबस हर मनुहार है।
भूखा कोई तेजा इन में, भूखा दुर्गादास है।
भूखी मीराबाई कोई, भूखा बांकीदास है।[2]

तथा

डूब रहा चिन्ता में सांवला दिनमान।
ऐसे में आया है पाहुना बसन्त।

1. 'अजानी सलीबों पर' में प्रकाश आतुर की कविता, 'बंगला देश', एक प्रतिक्रिया, पृ. 20-21
2. जलते अक्षर (ले. ताराप्रकाश जोशी) पृ. 28

सूनी हैं झोंपड़िया, खाली है गाव।
अनुभ शकुन स्यारो के चीखते विराव।
और कर्जदार है, साझ, है उधार।
बुझे हुए चूल्हो मे सीझते अभाव।
घुटनो मे शीश धरे बैठी है आस।
कितना है निर्मम यह सपनो का अन्त।[1]

एक और अभिव्यक्ति दृष्टव्य है—

भूखे अगना, लुटी मढैया, उजडी हर चौपाल है।
कैसे मैं मुस्काऊं मितवा, मेरे गाव अकाल है।
जब से भूख उगी खेतो मे, सूख गई फुलवारिया।
रीते घट, भारी मन लेकर बैठी है पनिहारिया।
कुछ तुतले सपनो ने कल ही रो रो कर दम तोड दिया,
शेष एक बूढी खासी है और चरखे की माल है।[3]

इस प्रकार राजस्थान की हिन्दी काव्य-धारा, राष्ट्रीयता के अनेक आयामो एव सदर्भों का स्पर्श कर विकसित हुई है। भारतेन्दु व द्विवेदीयुगीन राष्ट्रीयता को जो रूप परिवर्तित परिवेश मे विकसित हुआ, प्रान्त के कवि ने उसे बदलते परिवेश मे नये सदर्भों से जोड कर मुखरित किया। भारत-वन्दना, श्रम-वन्दना, जनता-वन्दना, स्वतत्रता की रक्षा व आक्रान्ता को चुनौती, साम्प्रदायिक सौमनस्य समाज-सुधार, भ्रष्टाचार विरोध, शहीदो के श्रद्धांजलि तथा अकालक्षण मे य चित्रण के साथ कर्त्तव्य-स्मरण आदि विविध विषय है, जो राजस्थान की यु राष्ट्रीय चेतना के विविध रूपो मे रुपायित हुए है।

---

1. उतरें प्रखर, (नि. ताराप्रकाश जोशी) पृ. 29
3. मने किरण पाय, (ने. हरिराम आचार्य) पृ. 65

4
छायावादी गीतिधारा

यद्यपि हिन्दी में सन् 36 के आस-पास, छायावादी काव्य की प्रधानता समाप्त सी हो गई थी किन्तु इस काव्य-धारा का प्रभाव आज दिन तक देखने को मिलता है। राजस्थान के जिन कवियों ने राष्ट्रीयता-परक काव्य की रचना की, अथवा कालान्तर में प्रगतिवाद या प्रयोगवाद के स्वर में स्वर मिलाया, उन कवियों ने छायावादी अभिव्यक्ति को भी माध्यम के रूप में स्वीकार किया। पंत, प्रसाद, निराला आदि की काव्य-चेतना का प्रभाव बड़े व्यापक स्तर पर यहाँ की काव्य-चेतना पर पड़ा है। छायावाद की कल्पना, प्रतीकात्मकता, शृंगारात्मक प्रवृत्ति, अतिशय भावुकता, एकान्तप्रियता तथा अन्तर्मुखता आदि की सूक्ष्मातिसूक्ष्म अभिव्यक्ति इस प्रान्त के कवियों ने प्रस्तुत की है। प्रणय निवेदन के सम्बन्ध में यह दृष्टव्य है कि यहाँ के कवि ने प्रकृति और अध्यात्म की सूक्ष्म भावभूमि पर समन्वय करके, अज्ञात के प्रति जिज्ञासामूलक प्रणय निवेदन भी किया है तथा स्थूल मांसलता और लौकिकता को भी दृष्टिपथ पर आने दिया है। छायावाद के प्रमुख प्रतिनिधि कवियों सी सांकेतिकता भी इन कवियों में है और लौकिकता के 'केनवास' पर व्यक्तिवादी प्रणय-निवेदन के स्वर भी बड़ी तीव्रता के साथ उभरे हैं। गीति शैली के माध्यम से विरह की व्यथा और अतृप्ति के व्याकुल क्षणों की अभिव्यक्ति प्रस्तुत करने में इन कवियों को पर्याप्त सफलता मिली है। अनुभूति की तीव्रता, अभिव्यक्ति की मार्मिक सफलता, भावों की गहनता, संक्षिप्तता एवं भाषा का परिमार्जित रूप, इन कवियों की कृतियों में देखने को मिलता है। इनके गीतों में सहज सरसता, प्रवाह मुक्तता, प्रणयानुभूति, वैयक्तिकता, कल्पना, भावुकता, भावात्मकता, लयात्मकता, सहजता, संगीतात्मकता आदि गीति-काव्य के गुण, न्यूनाधिक मात्रा में देखने को मिलते हैं। राजस्थान के कवि को यह परम्परा सुधीन्द्र के माध्यम से प्राप्त हुई जो स्वयं छायावादी युग के प्रतिनिधि हस्ताक्षर के रूप में प्रतिष्ठित हैं। उनके काव्य में व्यक्ति का मन ऐसे आत्मीय भाव से मुखरित हुआ कि उसमें सामाजिक जीवन के घात-प्रतिघात की प्रतिध्वनियाँ भी मिलती हैं।

'स्वानुभूति की सहज स्वच्छन्द व अभिव्यक्ति छायावाद का प्रधान लक्षण है। प्रेम और सौन्दर्य की उदात्त भावना, उसका प्रमुख विषय रही। [illegible] प्रकृति के मानवीकरण [illegible] की विराटता और नारी की [illegible] महत्वपूर्ण स्थान विकसित हुए। छायावाद ने हिन्दी काव्य के शैली शिल्प में क्रान्तिकारी परिवर्तन किये। स्वानुभूति की अभिव्यक्ति के अनुसार, [illegible] में मानसिक और [illegible] छायावादी कविता ने ऐतिहासिक महत्व का कार्य किया। छायावाद की [illegible] विधायिनी शैली के साथ ही काव्य में लाक्षणिक मूर्तिमत्ता, चित्रात्मकता और [illegible] विकसित हुई। [illegible] का [illegible] पाकर हिन्दी कविता नवीन शैली से सम्पन्न हो उठी। [illegible], स्वच्छन्दतावाद, प्रकृतिवाद, सौन्दर्यवाद, रहस्यवाद, दुःखवाद आदि अनेक नामों से अभिहित होने के बावजूद छायावाद मुख्यतः मानवतावादी रहा है।'[1]

प्रकृति को सचेतन सत्ता के रूप में चित्रित करने व उसके प्राकृतिक चित्र प्रस्तुत करने के लिये इस अंचल के कवि ने प्रकृति को अपने हर्ष-विषाद की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है। ज्ञान भारिल्ल कृत 'आकाश कुसुम', रामगोपाल 'दिनेश', कृत 'मधुरजनी', कन्हैयालाल सेठिया कृत 'दीपकिरण' एवं 'प्रतिबिम्ब', परमेश्वर द्विरेफ कृत 'धूप के धूम और मरु के टीले', मनुज कृत 'बादल और बाँसुरी', रामगोपाल विजयवर्गीय कृत 'अभिसार निशा' और 'घनश्यामी' में प्राकृतिक सुषमा को अनेक संदर्भों में स्थापित किया गया है। अपनी वैयक्तिक-चेतना के संदर्भ में बसन्त को सम्बोधित करते हुए कवि कहता है—

> जग जीवन की शून्य सृष्टि पर प्रिय बसन्त उतरो, उतरो।
> चिर रहस्य के छाया-पथ से, हे अनन्त उतरो, उतरो।
>
> चिर आये कितने नैराश्यों के सूखे-सूखे पतझर,
> एक-एक कर आशाओं के सारे पत्र गए भर भर,
> इन नंगी शाखाओं की याचना भरी बाहें फैला,
> धरती भेज रही है युग तक, करुण भावनाओं के स्वर।
> शस्य-श्यामल की लज्जा का, आँचल और न जीर्ण करो।
> बहुत हो चुकी मनुहारें अब, मधु बसन्त उतरो, उतरो।[2]

1. छायावाद–डा. रवीन्द्र 'भ्रमर', पृ. 194
2. साँझ उतरी–ले. ज्ञान भारिल्ल, पृ. 47

: अन्य गीत में इसी कवि ने, बसन्त के संदर्भ में अपने मन की सघन उदासी को अभिव्यक्ति दी है।[1] प्रकृति को जीवन्त, सचेतन रूप में प्रस्तुत करते हुए कवि ने मनो पीड़ा को मार्मिक अभिव्यक्ति दी है—

1. क्या पता तूने उसे या चांद को क्या कह दिया ?
   रात भर मुझसे लिपट रोती रही कम्न चांदनी।[2]

2. अमराई का आंचल ओढ़े, गुमसुम सोई झील परी।
   दरपण मुख पर रजत रेशमी चंदा की किरणें बिखरी।
   किस छवि के जग से उतरी, झिलमिल-झिलमिल झील परी।[3]

कवि घनश्याम 'शलभ' ने भी प्रकृति को विभिन्न रूपों में चित्रित किया है। एक गीत 'सुनसान दुपहरी जलती है' में कवि ने प्रकृति के उस रूप को अंकित किया है जो कोमल नहीं है लेकिन राजस्थान में जिसका नग्न रूप सामान्यतः देखने को मिलता है—

सुनसान दुपहरी जलती है

कोकिल क्या गाये, क्यों रोये, सुनसान दुपहरी जलती है।
कांपा करती धरती भी जब, डम्मर पग तले पिघलती है।[4]

है घूम रहा सौरभ के मिस, मलयानिल धूप के से कपटी।
पट की उघाड़ परिमल उसरा, चोरी से कोई लगा घुरा ?
इस रजत-श्वेत सी स्मिति ही से हस रही मौन यह वन्य धरा।[1]

कवि दिनेश ने सध्या-सुन्दरी का मानवीकरण करते हुए सशक्त अभिव्यक्ति की गीतात्मकता का परिचय इन पक्तियो मे दिया है—

सध्या सुन्दरि !
उन्मन उन्मन नाची नभ मे
सध्या सुन्दरि।
कुसुम-चरण, रवि-किरण-कलित-पुर
चल-चितवन मे मधु मदन भर,
नील गगन के निर्मल पट पर
मदिर मदिर मृदु पग धर नाची
सध्या सुन्दरि।[2]

तथा

में उभारा है[1] राजस्थान की मरुस्थली-प्रकृति और उसका सौन्दर्य अपनी भिन्न प्रकार की विशेषताओं से सम्पन्न है। बालू रेत के अप्रतिम सौन्दर्य और मरुधरा के रूप-वैभव का चित्रण परमेश्वर द्विरेफ ने विस्तारपूर्वक किया है। उनके 'धूल के फूल' शीर्षक काव्य संकलन में रेगिस्तानी प्रकृति के सौन्दर्य की छटा है। एक अन्य कृति 'मरु के टीले' में कवि ने उपेक्षित मरुस्थलीय सुषमा के सजीव, भव्य चित्र प्रस्तुत किये हैं। 'मरु के टीले' में कवि इस उपेक्षा भाव पर द्रवित हुआ है, जबकि 'धूल के फूल' में ज्योत्स्ना, प्रभात, सन्ध्या आदि के सौन्दर्य पर वह मुग्ध हुआ है। इस कृति में कवि की चेतना सांस्कृतिक है। उसमें सौन्दर्य के साथ शालीनता भी है। नीरस प्रकृति के सरस चित्र प्रस्तुत करने में द्विरेफ को बड़ी सफलता मिली है। शुष्क संकुल प्रदेश में कवि ने जीवन सौन्दर्य और माधुर्य की अनुभूति प्राप्त की है—

1. सिकता-सुन्दरता बड़ी निखर,
   मरु के टीलों के कान्त शिखर,
   नभ की कुंकुम अब रही बिखर,
   ❀ ❀ ❀
   टीले नभ में, टीलों पर नभ
   उड़ने वालों में अब संयम
   मस्तिष्क गया नीचे ज्यों नभ[2]

2. अल्हड़, मंजुल और यौवने, तुम मेरी कामिनी बालुके।[3]

3. मंजु मरु-मंदाकिनी पर, चाँदनी का हास गिरता।
   मरुधरा-भागीरथी पर चाँदनी का स्वर्ग गंगा।
   हास्य की सी श्वेत-भाषा-सा विमल प्रभुक सुरता।[4]

4. नभ में मीठा तरबूज उगा[5]

   या

5. नभ में बिखरे कितने काफर।[6]
   हुई सुनीत बालुका सुशीतल प्रभात में

1. 'सप्त-किरण' में संकलित प्रकाश आतुर की कविता।
2. धूल के फूल—से. परमेश्वर द्विरेफ, पृ. 4-5
3. वही, पृ. 55
4. वही, पृ. 13
5. वही, पृ. 7
6. वही, पृ. 19

विलीन अन्धकार-तम विशाल मिल रह गई ।
असीम चन्द्रहास की सुधा ज्योति बह गई ।
अनन्त पुण्य ज्योति में अनन्त ज्योति में घुले ।
असीम शून्य में असीम तार कोटिशः खुले ।
समा गया वहीं अमर, तार तार-तार में ।[1]

परमेश्वर 'द्विरेफ' के प्रकृति चित्रण एवं भाषा शैली पर पंत एवं महादेवी का प्रभाव स्पष्टतः लक्षित होता है। शब्द-शिल्प एवं अभिव्यक्ति-माधुर्य तथा कोमलकांत पदावली की सरसता, इन कविताओं में सर्वत्र उपलब्ध है। 'मरु के टीले' का प्रथम गीत, पंत के 'संध्या-तारा' से प्रभावित है। मरुस्थली के प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन कर कवि ने अछूते विषय का स्पर्श किया है।[2] रामगोपाल विजयवर्गीय के 'अभिसार-निशा' में प्रकृति तथा मानवीय सौन्दर्य के साथ चित्र अंकित हुए हैं। अभिसार के निमित्त कवि ने प्रकृति को उद्दीपन रूप में और कहीं-कहीं स्वतन्त्र केवल सत्ता रूप में चित्रित किया है—

सेकर अधर गति प्राणों में, बह चला सौरभित सांध्य-पवन ।
धरणी के उर को पुलकित सा, छूता था जैसे नील गगन ।[3]

❀ ❀ ❀

मुरझाये विकसित कमल कोश, अविचल सा हुआ सरोवर जल ।
नीरव पथ के जन-शून्य विपिन, चुप खड़े वृक्ष थे अटल अचल ।
निशि की नूतन घन नील प्रभा, पृथ्वी पर उतर बसी प्रतिपल ।
सो गये विहग शाखाओं में, द्रुम लता-जाल, पल्लव निश्चल ।

छायावाद के प्रमुख कवियों में वैयक्तिकता के साथ गहरी सामाजिक चेतन
है, लेकिन राजस्थान के हिन्दी कवियों में एक-दो अपवाद छोड़ कर, स
से गहरी एकान्तिकता ही देखने को मिलती है। कवि सुधीन्द्र ने छाय
काव्य-शिल्प ग्रहण कर, अभिव्यक्ति को अधिक सप्राण, स्फूर्तिदायक बना
मन में व्यक्तिवादी वासना नहीं है वे छायावादी स्वप्न चुरा कर अन्त
हुए। सुधीन्द्र के प्राणों में कवि बसा था, वह रवीन्द्र को समर्पित था,

1. धूल के फूल—ले. परमेश्वर द्विरेफ वही, पृ. 53
2. दृष्टव्य—परमेश्वर द्विरेफ की अन्य कृति 'मरु के टीले' के गीत ।
3. अभिसार-निशा—ले. रामगोपाल विजयवर्गीय, पृ. 3

प्राणों में जो मनुष्य था, वह गांधी को समर्पित था। 'अमृत लेखा' में अन्य छाया-वादियों की भाँति निराशा या मृत्यु कामना या इसी प्रकार किसी गर्हित रोमान्स आदि कुछ भी नहीं है। उस पर रवि ठाकुर के काव्य-शिल्प की गहरी छाप है। 'अमृत लेखा' में चिन्तन है, जो एक गहरी करुणा और कुछ जीवन के गम्भीर प्रश्नों को लेकर समाहित है।[1]

अमर जो न मुझे करे वह दान लेकर क्या करूंगा ?
अक्ष पर अपने निरन्तर, घूमता मैं चक्र बन कर।
लक्ष्य अपना पा सकूंगा, प्राण क्या निज लक्ष्य खो कर ?
प्रेय दो तो मुझे, मैं प्राण लेकर क्या करूंगा।[2]

तथा

अमर प्राणों की अधिरता दी मुझे उपहार में क्यों ?
मुक्ति थी इतनी मनोरम, और परवशता मरण सम,
कर लिया बंदी चिरंतन, घेर मुझ को प्यार में क्यों ?[3]

'अमृत लेखा' के गीतों में छायावादी शैली के सामाजिक दायित्व का निर्वाह कवि ने इस प्रकार किया है

कवि विश्वेश्वर शर्मा ने 'बिम्ब बिम्ब चाँदनी' के अधिकांश गीतों में नये प्रतीकों व उपमानों का प्रयोग किया है। कुछ गीतों में फिर भी कवि परम्परागत रूप-चित्रण के मोह से मुक्त नहीं रह सका है। 'सुधियों के मौर', 'हिरना कस्तूरी के' आदि गीतों में नये प्रतीकों को माध्यम बनाया गया है[1] और 'मन वृन्दावन' में परम्परा का पूरी तरह अनुकरण किया गया है। विश्वेश्वर का यह गीत कल्पना एवं भाषा-सौष्ठव की दृष्टि से उच्चकोटि का बन पड़ा है। रूपक एवं उपमा के माध्यम से कवि ने अपने समूचे व्यक्तित्व को ब्रजमण्डल के विस्तृत आयामों तक फैला दिया है। उसका मन वृन्दावन है, विश्राम कान्हा है, सुधियाँ गोपियाँ हैं और राधिका अतृप्त तृष्णा है। इस वृन्दावन में 'गीतों के कुंज' हैं, 'कामना की कलियाँ' हैं, 'संकल्पों की राहें' हैं, 'भावना की गलियाँ' हैं। कवि ने 'एकाग्र ध्यान' को कदंब और 'साधना' को कालिन्दी मानते हुए 'जीवन-उपवन' में मधुमास की व्याप्ति बतलाई है। उसका अटूट निश्चय 'गिरिराज' है, आस्था 'मन्दिर' है, 'अभिलाषा' काम-वन है, 'प्रेम' वंशी तट है, 'भक्ति' रास और 'स्पन्दन' बाँसुरी का मादक स्वर है। 'मन का साहस' बलराम, 'उत्साह' ग्वालबाल, 'दुर्बलताएँ' दैत्य, 'द्वेष' कंस और 'त्याग-तपोबल' व 'दया-क्षमा' की भावना नन्द यशोदा है। उसका 'ज्ञान' उद्धव है और 'धर्म-भावना' अंकुर है। इस प्रकार उसका समूचा रागमय व्यक्तित्व, ब्रजमंडल का आभास देता है—

सांग-रूपक का सफल निर्वाह इस गीत में हुआ है।

जुग मन्दिर तायल ने भी अच्छे प्रतीकों का प्रयोग किया है। 'बसन्' 'आंगन बँतिया' आदि कविताओं में कवि ने ताजे प्रतीकों को चुना है—

खिड़की से फूल झाकने लगे।
भूली तस्वीरों को टाकने लगे
आमो के पत्तो में बौरो के गुच्छ
दूर-दूर मन्द गध काटने लगे।
सुनती हो। शिरीष फूलेगा आज
कचनारी पत्ते मुझे ढाकने लगे।[1]

कवि वीर सक्सेना ने परम्परागत और नये, दोनो ही प्रकार के गीत लिखे हैं परम्परागत गीतो में छन्द-लय का पूर्ण निर्वाह है और 'नव-गीतों' में छन्द का लय अधिक है। वीर सक्सेना की विशेषता यह है कि उनके गीतो का विषय चा पुराना हो, अभिव्यक्ति की ताजगी, उन्हे भी नया अर्थ देती है। अपने नव-गीतों में वीर ने युग की तिक्तता को शब्द-बद्ध किया है। उन्हे आज की भीड मे एकान्त नजर आता है जिसकी पुष्टि 'एकान्त मे घने जगल के चीर गीत' शीर्षक से प्रकाशित गीतो से होती है।[2] इन गीतो मे नयापन और ताजगी है। सम्बन्धों का अजनबीपन, महानगरीय सत्रास, शब्दो की अर्थहीनता और ऐसे ही कई आधुनिक भावों को कवि ने अपने नव-गीतो मे सहज-सवेद्य बनाया है। कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं—

1. परिचित होने पर जलधार अलग कर देती
   अपरिचय के सेतु से जुड़े तो है हम।
   और विभाजित होते और निकट आते तो,
   सत्य अवतरित होने स्वय को छू पाते तो,
   हमें घेर लेतीं तब लघुता की परिधियां,
   चरण अगर कल्पित विस्तार में बढ़ाते तो।
   साथ-साथ चलते तो पथ विलग कर देता,
   समान ही दिशाओं मे मुड़े तो हैं हम।

1. सूरज सब देखता है (ले. जुग मन्दिर तायल), पृ. 45
2. दृष्टव्य-साप्ताहिक हिन्दुस्तान में प्रकाशित। 7 जून, 1969

भावुक हो उड़ते तो भटकते हवाओं में,
अब किसी धरातल पर खड़े तो हैं हम ।[1]
आग नहीं, मर्माहत प्रश्नों के पार्श्व में
2. जलती है मेरी ही देह ।
कब से वक्ष पर रखा हुआ, यह मुक्ति का क्षण
शिला की तरह दबा रहा ।
देह की कन्दराओं में मरणासन्न पड़ी है इच्छा
किसी एक कोने में बैठा यह बदसूरत जानवर
शब्दों को गोश्त की तरह चबा रहा ।
विरामों में कंपता है, ध्वनियों का अन्तराल
राग नहीं ।[2]

3. दृग आकृति तो गई है दृगों के तल में,
बिम्ब धुलने जा रहे हैं अश्रु के जल में ।

वो घना संकेत, भावुकता भरे वो कथ्य,
खो चुके सदर्भ वेवश, रह गये हैं तथ्य
स्वयं को इतने निकट लाया मुझे एकान्त
छोड़ आया बहुत पीछे मोह का सीमान्त ।
चतुर्दिक घेरे मुझे हैं सुपरिचित ध्वनियां,
मैं अपरिचित सा खड़ा हूं, मौन हल-चल में ।[3]

नव-बोध के भाव-गीत, जो नये शिल्प से तराशे गये हैं और अर्थ की लय से युक्त हैं कुमार शिव, तारादत्त निर्विरोध, ब्रजेन्द्र रेही, हरीश भादानी के काव्य-शिल्प की शोभा हैं । इनके गीतों में हर्ष-विषाद के अनुभव नये प्रतीकों और उपमानों के माध्यम से व्यक्त हुए हैं ।[4]

---

1. वही, 'अपरिचय के सेतु' शीर्षक गीत
2. वही, 'पुनरावृत्ति' शीर्षक गीत ।
3. 'मधुमती', जुलाई 65 के अंक में वीर सक्सेना का एक गीत ।
4. दृष्टव्य-शंख रेत के चेहरे (कुमार शिव) गीत-यात्रा (तारादत्त निर्विरोध) सुधियों की देहरी (ब्रजेन्द्र रेही) तथा सपन की गली (हरीश भादानी) के गीत ।

वैयक्तिक सुख-दुःख एवं आशा-निराशा का स्वर, ज्ञान भारिल्ल के गीतों में सर्वाधिक उभरा है। रोमेन्टिक कवियों की भांति उन्होंने प्रणय-निवेदन प्रस्तुत किया है और मानसिक हर्ष-विषाद के क्षणों की मार्मिक अभिव्यक्ति दी है। वे वस्तुतः 'शापित कामना के कवि हैं और उनकी चाह अतृप्ति के सीमान्तों से टकरा कर अनादृत लौट आती है। कवि का मन जीवन की असफलताओं पर चीत्कार कर उठता है और सूक्ष्म प्रतीकों के माध्यम से मन के हाहाकार को अभिव्यक्ति देने लगता है। कवि ने रूप, रंग और रस के सरस एवं रंगीन चित्रों के माध्यम से मन की पीड़ा को उकेरा है।[1] हरिशंकर शर्मा 'हरीश' की तृप्ति में अभिशाप है और मुक्ति में शाप के दर्शन होते हैं। कवि की पीड़ा उस क्षण बढ़ जाती है जबकि चीत्कार करने की विवशता होने पर भी कंठावरोध हो जाता है। हरीश मादकता और रस के चितेरे कवि हैं। उनके ललित गीतों में गीतिकाव्य की विशेषताएँ, न्यूनाधिक मात्रा में मिलती है।[2] विडम्बना यह है कि राजस्थान के कवि का दर्द इतना वैयक्तिक और एकांतिक है कि एक का दर्द, सब का दर्द नहीं बन पाता। अधिकांश कवि घोर अन्तर्मुखी बन कर, 'स्व' की छोटी सी परिधि में सीमित रह गये है।

दार्शनिक जिज्ञासा का निखरा हुआ सशक्त रूप, कन्हैयालाल सेठिया के गीतों में मिलता है। सेठिया ने 'भारतीय दर्शन के इन्द्र धनुषी रंगों से, काव्य की मंगलकाया को सज्जित किया है। 'दीप-किरण' के गीतों में कवि ने बाह्य-सौन्दर्य से चमत्कृत न हो कर उसके मूल में स्थित तथ्य को देखने का प्रयत्न किया है। कवि ने जीवन की छोटी-छोटी घटनाओं के माध्यम से दार्शनिक उक्तियाँ, कलात्मक ढंग से प्रस्तुत की हैं। 'प्रतिबिम्ब' में कवि ने जीवन के परिचित सत्य को बड़ी सादगी, लेकिन शिल्पगत कौशल के साथ प्रस्तुत किया है। सेठिया के गीत रहस्य-दर्शन, सौन्दर्य-चेतना, तीव्र अनुभूति और दार्शनिक जिज्ञासा से प्रेरित हैं। सेठिया ने 'सार्वदेशिक और सार्वकालिक सत्यों के खुरदरे पाषाण-शिल्प-खण्डों को अपनी दर्शन भावापन्न चिन्तन शैली से छील कर सौन्दर्य की अनूठी प्रतिमाओं का रूप दिया है। 'रूमानी कवि की भांति उन्होंने अभिव्यक्ति को ताजगी देने के लिये कई स्थलों पर प्रकृति के प्रतीक चुने हैं जो जीवन की क्षण भंगुरता को जितनी सशक्तता से प्रकट करते हैं, मन को उतनी ही गहराई तक प्रभावित भी करते हैं। कवि के अनेक गीतों के शीर्ष पंक्ति सूक्ति सी मार्मिकता लिये हुए हैं। सेठिया के गीतों में दर्शन के जटिल सिद्धांतों की सरल एवं रसपूर्ण व्याख्या मिलती है।

---

1. द्रष्टव्य-ज्वार, आकाश कुसुम, सांझ उतरी के गीत।
2. द्रष्टव्य-'धड़कनों के बोल' के गीत।

बोझिल से बोझिल विषय को भी कवि ने अपनत्व की परिधि में बांध कर सहज एवं बोधगम्य बना दिया है। इनके चिंतन-प्रधान गीतों के कुछ उद्धरण दृष्टव्य है—

1. बीज का अन्तिम चरण प्रिय
   बीज ही है फल नहीं है।
   डाल, कोपल, फूल किसलय, एक केवल आवरण है।
   भूलता इनमें कभी क्या, बीज निज को एक क्षण है।
   आज का अन्तिम चरण तो, आज ही है कल नहीं है।[1]
2. बुझ जाते अंगार, राख में दाह बनी रहती है।
   तृप्ति स्वयं में पंगु, तृषा की बाह थाम चलती है।
   रवि चाहे सो जाय, नखत से रात सदा जलती है।
   रुक जाता है पंथ, चरण की राह बनी रहती है।[2]
3. कीचड़ की अभिव्यक्ति कमल है।
   सीमाहीन असुन्दरता ही सुन्दरता का अथ बन जाती।
   चरम विरोधी दो धाराएं, अन्त मिलन का पथ बन जाती।
   सुर धनु के मोहक रंगों का जनक कलुषमय बादल दल है।[3]

सेठिया चिंतक कवि हैं, पर उनमें चिंतन की दुरूहता नहीं है। रहस्यवादी जिज्ञासा, वेदना, प्रेमाग्रह-अनुग्रह, निराशा, मिलन-तादात्म्य, परम-तत्व, जीवात्मा, माया, जगत, देह, आवागमन, जड़-चेतन आदि के सम्बन्ध में कवि ने सरस, बोधगम्य गीतों की रचना की है। कवि ने रहस्यवादी मुद्रा में परमतत्व को अनादि, अनंत, अखण्ड, अरूप एवं सर्वोच्च बताते हुए जगत को उसका लीलामय रूप माना है। देह, आत्मा का सिंहासन है और जीव के साथ कर्म एवं भाग्य जुड़े हुए हैं। सुख और दुःख दोनों ही भौतिक आसक्ति के सूचक हैं अतः मिथ्या हैं। स्थिति-प्रज्ञता ही मुक्ति है और जीवन के द्वन्द्वों के बीच ही जीवन-सत्य निहित रहता है।[4]

1. प्रतिबिम्ब, ले. कन्हैयालाल सेठिया, पृ. 3
2. वही, पृ. 5
3. दीपकिरण, ले. कन्हैयालाल सेठिया, पृ. 9
4. (अ) श्री कन्हैयालाल सेठिया और उनका हिन्दी काव्य (अप्रकाशित) गोविंदराम, पृ. 84
   (आ) दृष्टव्य—दीपकिरण के गीत क्रम 43, 77, 84, प्रतिबिम्ब के गीत क्रम 35, 70, प्रणाम के गीत क्रम 26, 40, 44 आदि

'अमृत लेखा' के गीतों के सम्बन्ध में प्रो० नन्द चतुर्वेदी का यह कथन उल्लेखनीय है—'इन प्रणय गीतों में आशा और निराशा, जीवन के प्रति उद्दाम विश्वास और कहीं-कहीं गहरी निराशा की अभिव्यक्ति है। इन गीतों के साथ कवि का व्यक्तित्व बना और इसी के साथ उनकी काव्य-रचना का रूप निर्धारित हुआ। इन गीतों में आस्था का जो मथन प्रारम्भ हुआ, वह सुधीन्द्र की प्रकृति का ही अंग था।'

पं० जनार्दनराय नागर अपने काव्य-सृजन में प्रसाद जी से प्रभावित एवं प्रेरित रहे हैं। उनका कवि-मानस, छायावादी-रहस्यवादी युग की देन है। उनका भाषा-शिल्प, चिन्तन प्रवाह, विषय-विस्तार, कल्पना-वैभव, सभी छायावादी युग की विशिष्टताओं से सम्पन्न है। 'यह तुम्हारा प्यार आया', 'जला प्यार का दीपक', 'यह तुम्हारा ध्यान आया' आदि गीति-रचनायें रागात्मक, व्यक्तिपरक अनुभूतियों से प्लावित हैं और प्रणय की शुचिता तथा रस-रूप के इन्द्रधनुषी चित्र उकेरती हैं। कवि ने जिस सौन्दर्य की उपासना की है। वह मांसल नहीं है, वह तो सौन्दर्य के आलोक से जनम-जनम के मन के अन्धकार को दूर करना चाहता है—

> जला प्यार का दीप दिल के विजन में
> भवों के अंधेरे स्वयं काटता हूं।

नागरजी पर रहस्यवादी प्रश्नाकुल जिज्ञासा का प्रभाव बड़ी गहराई तक पड़ा है। उनका कवि, अन्धकार पर ज्योति, ज्योति को चैतन्य और चैतन्य की आनन्दावस्था प्राप्त करने को व्याकुल है। उस अरूप, अज्ञेय के मिलन की कामना कवि को निरन्तर रहती है।

> अन्धकार विलय जहां पर ज्योति हो जाये।
> ज्योति सीमाहीन हो चैतन्य बन जाये।
> चैतन्य बन्धनमुक्त हो आनन्द हो जाये।
> वहीं पर तुम, तुम्हारा प्यार मिल जाये।

जनार्दन के चिन्तन का धरातल दर्शन-प्रेरित है। उनकी रचनाओं में प्रौढ़ चिन्तन मुखर हुआ है। उनका भाषा-शिल्प चाहे इतना तराशा हुआ न हो किन्तु भाव उर्मियों की बाहुलता और रागात्मक संवेगों की सहज प्रेषणीयता उनके काव्य को शृंगारित करती हैं।

राजस्थान में सभी काव्यान्दोलनों से गहराई तक जुड़े प्रो. नन्द चतुर्वेदी भी मूलतः गीतकार ही हैं। प्रारम्भ में इन्होंने रूप, रंग और गंध के प्रणय गीत लिखे और गीति-सृजन-क्षमता को नये आयाम दिये। नन्द बाबू का प्रारम्भिक

दृष्टिबोध रूमानी रहा है। प्रणय निवेदन या रूप-अंकन के क्षणों में भी कवि की दृष्टि सामाजिक-दायित्वबोध से अपरिचित नहीं रही है। कल्पना, प्रतीकात्मकता, अतिशय भावुकता और एकान्तप्रियता का व्यामोह कवि के पूर्ववर्ती काव्य में रहा है लेकिन वह पलायनवादी कभी नहीं रहा। सवेदनात्मक अनुभूतिपरक गीतों का सृजन नन्द चतुर्वेदी ने किया है जिनमें मन को बाध लेने की अपूर्व शक्ति है। वायवी भाव-तरलता उनके गीतों में नहीं है और न क्षयी रोमान्स की रुग्णता ही। प्यार की प्यास उनमें है, सुचिंतापूर्ण प्रणय निवेदन भी है लेकिन वह सब कहीं न कहीं गहरी सामाजिक चेतना से बंधा हुआ है जिसे सौन्दर्यबोध ने सुरुचिपूर्ण और सहज ग्राह्य बना दिया है। उनका शब्द-विन्यास और शैली-शिल्प किसी अनुकरण पर नहीं अपितु जीवन-बोध से स्वतः निःसृत हुआ है। कवि अपने 'प्राण' के 'पारदर्शी' रूप के 'अपरूप बन्धन' में बाध कर सागर और लहर सी एकात्मक स्थिति का अनुभव करता है और 'देह का अन्तर कहा-तुम प्राण हो', 'कह कर अपने समूचे व्यक्तित्व को 'ध्येय और ध्यान', 'मुक्ति और भगवान' की भांति अपने प्रणयालोक की स्वामिनी के साथ तादात्मय की अनुभूति प्राप्त करता है।

नन्द चतुर्वेदी ने प्रणय के हर क्षण को गहराई से लिया है और अन्तर्मन में भोगा है इसीलिये तो उनकी अनुभूति इतनी तीव्र, इतनी शक्ति-सम्पन्न, इतनी प्रभावशाली अभिव्यक्ति का कारण बन सकी है। इनके प्रणयगीतों में जो हार्दिकता और रसात्मकता है वह रूमानी मनोवेगों की 'गीतात्मक भंकृति से भंकृत है।' उनके गीतों में कहीं कुंठा या मानसिक अवसाद नहीं बल्कि एक सहज मुक्तता और आह्लादकारी अनुभूति है। 'अब तक रिक्त न हो पाया मन का बादल, किस सावन की रात हुई पहचान है' कह कर वह प्रणयानुभूति के चिरन्तन, शाश्वत सुख का उपभोक्ता बन जाता है और 'रात रात भर दीप जलाये राह में, मगर एक तुम हो कि नो आते नहीं', कह कर प्रतीक्षातुर मन की व्यग्रता को रूपायित करता है। एक गीतात्मक अनुभूति दृष्टव्य है—

> तुम्हीं ने बताया कि कैसे बंधी है, विमोहित दिशा चैत की चांदनी से।
> तुम्हीं ने बताया कि क्यों घिर रहा है, कहीं मेघ फिर आज सौदामिनी से।
> तुम्हारे सहज श्वास से है तरंगित, पवन से खिलीं फूल की कामनायें।
> तुम्हारी सरल चंदनी बाहुओं में, हुई मुग्ध सी प्रीत की अर्चनायें।

कन्हैयालाल सेठिया, मूलतः चिंतक हैं और भारतीय वेदान्त की निगूढ़तम अभिव्यक्तियों को सरस एवं हृदयग्राही शैली में अभिव्यक्त करने में निष्णात हैं। सेठिया के कवि-मन ने अनेक क्षितिजों का स्पर्श किया है। इनकी प्रकाशित काव्य-कृतियां हैं—वनफूल, मेरा युग, दीपकिरण, अग्निवीणा, प्रतिबिम्ब, प्रणाम, परम-

और सेनाणगिह, मुग्धी गिड़गिड़ा बोड़े गाये, प्रणाम, ताजमहल, धर्म, कुनकुन, प्रणाम, निर्बन्ध आदि। कवि की प्रथमकृति 'वनफूल' के गीतों में प्राकृतिक छटा सर्वत्र बिखरी हुई है। इन गीतों में पुलकन, विस्मय, श्रद्धा, गुन-गुन के भाव भरे हुए हैं जो शैशव और किशोरावस्था के व्यक्तित्व को गढ़ते और प्रभावित करते हैं। इन गीतों में कवि और एकाकिन हो गया है और प्रिय प्राप्ति के लिये निरन्तर जागते रहने में ही सुख की अनुभूति लेता है। 'दीप किरण' में कल्पना, अनुभूति और चिन्तन का अपूर्व सामञ्जस्य मिलता है। 'इन रचनाओं में चेतना के इस अमूर्त दावे के प्रति कि वह जड़ता से श्रेष्ठ है, बराबर विद्रोह है।' कवि का एक गीत इस सदर्भ में दृष्टव्य है—

> फूल विहंसता मूल मौन है।
> एक डाल के दोनो साथी, दोनों को ही हवा भुलाती।
> फूल झरेगा, मूल रहेगा, सत्य कौन है भूल कौन है?
> लहर नाचती कूल मौन है
>
> एक पथ के दोनो साथी, दोनो को किरणें नहलाती।
> लहर मिटेगी, कूल रहेगा, सत्य कौन है, भूल कौन है?
> चरण बोलता धूल मौन है।
> युग-युग से दोनो हैं साथी, दोनो पर ही नभ की छाती।
> चरण रुकेगा, धूल चलेगी, सत्य कौन है, भूल कौन है।

सेठिया ने प्रकृति को विभिन्न रूपो मे चित्रित किया है—आलम्बन रूप में, उद्दीपन रूप मे, रहस्यात्मक रूप मे, दार्शनिक रूप में, उपदेशात्मक रूप मे, प्रतीक रूप में, आलंकारिक रूप मे— सभी रूपो मे।

'प्रतिबिम्ब' और 'प्रणाम' के गीत कवि की प्रश्नाकुलता को कहीं छायावादियो की परम्परा मे स्थापित करते हैं और कहीं कबीर की उलटबांसियो के निकट ले जाते है। इन लघु गीतिकाओ मे कल्पना, अनुभूति और चिन्तन का अपूर्व संगम है। 'प्रतिबिम्ब' के गीतो मे बिम्बविधान के माध्यम से कवि ने 'सत्य के सुरदूरे पाषाण शिल्पखण्डो को अपनी दर्शन-प्राणपग चिन्तन शैली की छैनी से छील-छील कर सौन्दर्य की अनूठी प्रतिमाओ का सृजन किया है।' श्री गोविन्दराम के शब्दो मे—'दर्पण सी निश्छलता और निश्चलता लिये इसके गीत आत्मीय की भांति लिपट जाते है।' सेठियाजी का चिन्तन-विश्लेषण, गीति-तत्त्व को कहीं भी आहत नहीं करता। 'प्रणाम' मे कवि ने अपना नया मुहावरा अच्छी तरह संवार लिया है। इसके प्रत्येक गीत दर्शन के सूत्र से हैं। कवि ने दार्शनिक सिद्धात, परम-

तत्व, जीवात्मा, माया, जगत आदि के सम्बन्ध मे अपने चिन्तन को सुबोध, भाव-पूर्ण शैली मे व्यक्त किया है—

डाल, कोपल, फूल, किसलय, एक केवल आवरण है।
भूलता इसमे कभी क्या, बीज निज को एक क्षण है।
आज का अन्तिम चरण तो आज ही है, कल नहीं है।
बीज का अन्तिम चरण प्रिय, बीज ही है, फल नहीं है।
(प्रतिबिम्ब)

शून्य सुना करता है मेरे, प्राण-यज्ञ की पूत ऋचायें।
गिनती मे बध जाने वाले, श्रोता मेरे साध्य नहीं हैं।
सुन कर करें प्रशसा-निंदा, वे मेरे आराध्य नहीं हैं।
महामौन तक पहुचाने का, माध्यम मेरी गीति शिखायें।
(प्रणाम)

'मर्म', 'अनाम' और 'निर्ग्रन्थ', सेठियाजी की काव्य-प्रतिमा के कीर्तिकलश हैं। ये मत्र रचनायें हैं और इनमें कवि की दृष्टि सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होती गई है। उनके काव्य का केन्द्रीय विषय है—दर्शन और अपनी पूरी सृजनयात्रा मे दर्शन और आध्यात्म के जिन सोपानो पर वे चढ़ते गये, उनकी कविता कम से कम शब्दो मे सिमटती गई। इन गीतो मे कवि का तत्व-चिन्तन पुरानी प्रश्नाकुलता की परिधि से बाहर निकल कर उत्तर देने या समाधान प्रस्तुत करने की मुद्रा ग्रहण कर लेता है। ये कवितायें सेठिया को सन्त-परम्परा से जोड़ती हैं। उनकी 'गीति शिखायें', 'महामौन' तक पहुचने का माध्यम बनी रहती हैं। वस्तुत सेठियाजी का गीतिकाव्य ज्यो-ज्यो परिपक्व होता गया, उसकी स्थूलता घटती गई। कुछ अभिनव प्रयोग दृष्टव्य हैं—

मत कर खण्डित चिर अनाम को नामो में
बधता नहीं विराट, किन्हीं आयामों से।
परिचय है बूंद, अपरिचय सागर है
सूरज न भी रहे–गगन निछावर है
मत अगीत को बांट, रूप, रस, गंधों मे
रहता कब निर्बन्ध, कभी अनुबधों मे।
(अनाम)

[illegible]
[illegible]
[illegible]

(प्रभात)

[illegible]
[illegible]

जटिल से जटिल बात को सरल, सहज, रसपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करने में टिवाणी निष्णात हैं। वे मूलतः चिन्तक हैं और भारतीय दर्शन के गूढ़तम तत्व-चिन्तन को उन्होंने सरल, हृदयग्राही अभिव्यक्ति दी है।

परमेश्वर 'द्विरेफ', इस प्रान्त के ऐसे गीतकार हैं जिन्होंने उपेक्षित रेगिस्तान की प्राकृतिक सुषमा को अपने गीतों में अभिव्यक्ति दी है। 'मरु के टीले' और 'धूल के फूल' में कवि ने मरुस्थलीय प्रकृति के विराट रूप का चित्रण करते हुए सर्वांचित क्षेत्र में भ्रमण करने वालों के समक्ष उपवनों के कृत्रिम सौन्दर्य की सीमा भी निर्धारित की है। 'कवि ने मरुभूमि के टीलों, वृक्षों, पशु-पक्षियों के सम्बन्ध में जो चित्र प्रस्तुत किये हैं, वे मरुभूमि की शुष्कता के बावजूद सरस बन पड़े हैं। 'मरु के टीले' में कवि, बालुका-सौन्दर्य के प्रति उपेक्षा भाव पर द्रवित हुआ है लेकिन धूल के फूल' में वह उसके अपूर्व सौन्दर्य पर मुग्ध है। द्विरेफ के गीतों का महत्त्व इसलिये भी है कि सम्भवतः उन्होंने ही सबसे पहले शुष्क प्रदेश की प्राकृतिक सुषमा के भव्य चित्र प्रस्तुत किये हैं। उन्होंने अनूठी उत्प्रेक्षाओं, उपमाओं और रूपकों के माध्यम से उस सौन्दर्य को चित्रित किया है जो अब तक उपेक्षित सा रहा। 'धूल के फूल' की भूमिका में आचार्य शांतिप्रिय द्विवेदी ने ठीक ही कहा है—'आचार्य शुक्ल ने रक्ष प्रकृति में भी जिस नैसर्गिक सरसता का संकेत किया है, हिन्दी के वर्तमान काव्य-क्षेत्र में सम्भवतः द्विरेफ ने ही अपनी रचनाओं में उसका सजीव एवं मार्मिक चित्रण और प्राणोन्मेष किया है। काव्य की कला और आत्मा की दृष्टि से ऐसा जान पड़ता है कि पंत का प्रौढ कंठ ही द्विरेफ के किशोर कंठ में फिर मुलभ हो गया है।' द्विरेफ में प्रकृति-चित्रण एवं भाषा-लालित्य पर पंत एवं महादेवी का प्रभाव स्पष्टतः लक्षित होता है। शब्द-शिल्प, अभिव्यक्ति माधुर्य एवं कोमलकांत पदावली की सरसता इनके काव्य में सर्वत्र उपलब्ध है। द्विरेफकृत महाकाव्य 'मीरा' का भाषा शिल्प छायावादी होते हुए भी प्रसाद-गुण सम्पन्न है। वस्तुतः द्विरेफ कोमल भावनाओं के मधुर गीतकार हैं।

डा० रामगोपाल शर्मा 'दिनेश' के काव्य ने विविध क्षितिजों को स्पर्श किया है और अपनी काव्य-यात्रा में उन्होंने कथ्य एवं शिल्प में विकास किया है। उनकी 'मधुरजनी' और 'रूपगंधा' में सौन्दर्य एवं प्रणय की सहज अनुभूतियों को गीतात्मक वाणी मिली है। ये दोनों कृतियां गीति-काव्य-परम्परा की महत्वपूर्ण कड़ी है। इन गीति-कृतियों में कवि ने जीवन की मधुर और सुकुमार अनुभूतियों को तन्मयतापूर्ण अभिव्यक्ति दी है। 'मधुरजनी' तो छायावादी गीति-परम्परा की उत्कृष्ट कृति है जिसमें जीवन, प्रकृति और अध्यात्म सम्बन्धी अनुभूतियां मुखर हैं। इन गीतों में कवि ने उस अज्ञेय, परम-तत्व के प्रति विस्मय एवं जिज्ञासा का भाव प्रकट किया है और उसे असीम, निराकार, अक्षय, अनादि कह कर सम्बोधित किया है। कवि की रहस्यानुभूति बड़ी गहरी है और वह प्रकृति के कण कण में उसकी चेतन सत्ता को व्याप्त देख कर अभिभूत हो जाता है। प्रकृति के कमनीय रूप में कवि को उस विराट सत्ता के दर्शन अनेक रूपों में होते हैं। विहगों के कलरव में, तरु-मर्मर-ध्वनि में, सुरभित पवन के मधुर-प्रवाह में, लहरों की हलचल में और वर्षा की रिमझिम में वह उसका अलौकिक संगीत सुनता है और आश्चर्य चकित होता है। दिनेश का विस्मय, जिज्ञासा और सहज मुग्धता का भाव, जिस काव्य-शिल्प के माध्यम से व्यक्त हुआ है वह उन्हे छायावादी परम्परा के श्रेष्ठ कृतिकारों में आसीन कराता है। प्रकृति का सहज सौन्दर्य उनके काव्य में शतशत रूप में मुखर हुआ है। संध्या, प्रात, निशा तथा बसन्त के अनेक मनोरम चित्रों की चित्र-शाला है 'मधुरजनी'। एक उद्धरण दृष्टव्य है—

मधु स्नात मेरी गगन-गंगा में विहंसती यामिनी।
सिन्धु फेनिल ऊर्मियों सी
रश्मियां झिलमिल पुलकती।
स्वर्ण-सुमनों पर सुचंचल
चिर-कसक-मधु जल बरसती।
मधुगीत बन मेरे हृदय में, नित कसकती रागिनी।

'रूपगंधा' में 'विश्वात्मा की रूपात्मक अनुभूति के साथ समकालीन मानव-जीवन की विद्रूपताओं' को भी कुछ कविताओं में अभिव्यक्ति मिली है। 'मधुरजनी' में कवि की प्रतिभा रहस्यानुभूति प्रेरित रही है लेकिन 'रूपगंधा' के रूप की गंध गीतों को सुवासित कर रही है। कवि ने प्रणय के एक एक पल को जिया है और रूप की आत्मा की गहराई तक उतार लिया है। इन गीतों में देह का रूप तो है ही पर वह आत्मिक-सौन्दर्य से समन्वित है। 'जिस क्षण देखा रूप तुम्हारा, उस

सौंदर्य के रूप का [illegible] हुआ है। मुस्कान बुहारती अलकें हैं के कवि ने नारी के इस रूप को अंकित किया है जो यौवन नहीं है लेकिन जिसका [illegible] का साक्षात्कार [illegible] देखने को मिलता है —

यौवन [illegible], ढला [illegible]
मुस्कान बुहारती अलकें हैं।
[illegible] काली पाली भी अब
[illegible] [illegible] लगती है।

इसी प्रकार 'सावन का पंछी', '[illegible] के मधुर [illegible]', 'बसन्त की धूप' आदि कविताओं में बसन्त, वर्षा, [illegible], मेघ और बसन्त ऋतु का जीवन-सन्दर्भों में कवि [illegible] हुआ है। 'बसन्त के फूल' कविता में कवि ने धन की महिमा का [illegible] करते हुए बसन्त के [illegible] की ओर संकेत किया है—

शरद् [illegible] में गिरे फूल पर
भंवरे नहीं यहाँ मंडराते।

आकाश पवन, मृदु रूप कांति, सब हरे नयन द्युति में निखरी।
है घूम रहा सौरभ के मिस, मधुमालिन [illegible] में बिखरी।

'[illegible] और बाँसुरी' के अधिकांश गीत, प्रणय की मुग्धता और रूप के भव्य, [illegible] चित्रों के मनोहर अलबम हैं। [illegible] ने भावविभोर होकर इन प्रणय गीतों की सर्जना की है। वे प्रणयगीतों के सक्षम शिल्पी होने के साथ-साथ कोमल वर्ग के सौंदर्यवादी पक्षधर भी हैं। भाषा की दृष्टि से वे छायावादी और लोकधर्मी चेतना के गायक कवि हैं। गीतिधारा की श्रेष्ठ कवि-पंक्ति में वे शामिल हैं।

रामगोपाल विजयवर्गीय, तूलिका और लेखनी की समन्वित प्रतिभा के कला साधक हैं। इनकी प्रकाशित काव्य कृतियां हैं—अलकावली, चिंगारियां, अभिसार निशा, चित्र-गीतिका आदि। 'अलकावली' के प्राय सभी गीतों में निराशा, अवसाद, व्यथा, तड़पन आदि की अभिव्यक्ति हुई है। इन गीतों की प्रकृति रूमानी है और शैली छायावादी। इनके रूप सौंदर्य में मांसलता का प्राधान्य है। 'चिंगारियां' में देह-वासना अधिक मुखर हुई है—

मांसलता हूं निम्न मेरे प्रणय गीतों का स्तर।
कण में अनुरक्ति मेरी, वासना रस-युक्त स्वर।

मांसिक सौंदर्य पर कवि की अनुरक्ति अधिक है। रूप के मादक चित्रण में कवि का मन अधिक रमा है—

केश उन्मुक्त बन कर तिमिर पुंज से
मुख प्रभा पर चले आ रहे हैं उधर
बादलों की विपुल एक सेना चली
आ रही है उमड़ती इधर से उधर।
ये अलस अंग, गिरता हुआ सा गमन
कुछ बिखरने हुए से शिथिल से वसन।
कौन से स्वप्न को रूप देने उठे
नींद के अंक में झूलते से नयन।

वि की कामना केवल यह है—'मुझे तुम्हारे यौवन का उन्माद भरा समार
ाहिये'। 'अभिसार निशा' में प्रकृति का भव्य चित्रण हुआ है। कवि ने गोपिकाओं
ार कृष्ण के अभिसार मिलन को इन गीतों में वाणी दी है। इस कृति में भावों
ी गहनता और भाषा-शिल्प, पूर्व कृतियों की अपेक्षा कहीं अधिक प्रभावशाली
ौर सक्षम है। अभिसारिका राधिका का रूप-वैभव निम्न पंक्तियों में जीवन्त रूप में
स्तुत हुआ है—

मल्लिका कुसुम दल केश ग्रथित
सज्जित तन पर नीला निचोल।
मीनों के सदृश उछलते थे
घूंघट पट में दो दृग पटोल।
वलयित थी दूर दिशाओं तक,
चतुरा चितवन की भृकुटी लोल।
पलकों पर जटिल प्रतीक्षा-पल
देते मुख पर रस मधुर घोल।
शोभा मृणाल वन की हरते थे
गौर बाहु युग डोल डोल।
लुंठित उन्नत वक्षस्थल पर
होता मुक्ता फल गोल गोल।
कटि हो जाती डोलायमान—
किंचित उरोजों का भार तोल।
फिर श्रम से थकित जघन युग पर
आते हीरक हार डोल।

ज़िंदगी राज़े हकीकत के सिवा कुछ भी नहीं
ज़िंदगी एक इबादत के सिवा कुछ भी नहीं
सच तो यह है कि मोहब्बत की बेखुदी के बिना
ज़िंदगी सांस की आदत के सिवा कुछ भी नहीं।

ज्ञान भारिल्ल—राजस्थान के ललित मधुर गीतकार हैं। 'ज्वार', 'आकाश कुसुम', 'सांझ उतरी' आदि उनके चर्चित प्रकाशित काव्य संकलन हैं। 'भावोच्छ्वसित मधुमयी गीतात्मकता', उनके गीतों की विशिष्टता है। ज्ञान भारिल्ल के गीतों में भाव मुक्तता, आत्मानुभूति, वैयक्तिकता, कल्पना–वैभव, भावुकता, संक्षिप्तता, सरसता, सहजता, संगीतात्मकता अर्थात् गीति के सभी तत्व विद्यमान हैं। 'ज्वार' के गीतों में आत्म निवेदन और जीवन की रूपाकृतियों से प्रेरित कल्पित प्रेयसी के प्रति हृदय-निवेदन है जो प्रकृति के विभिन्न प्रतीकों से व्यक्त हुआ है। ज्ञान के इन गीतों पर बच्चन के 'निशा निमंत्रण' और 'एकान्त संगीत' का व्यापक प्रभाव पड़ा है। कवि पीड़ा की हर स्थिति में गाने को उत्सुक है—

ठोकर पर ठोकर खा कर भी
आंसू का ज्वार उठा कर भी
मैं शांत नहीं बैठा देखो, गाते हैं अब भी गीत अधर।

इन गीतों में तरुण हृदय का सहज उच्छ्वास है। इनमें यौवन के चाह भरे सपने, अतृप्त कामनायें और इन्द्रधनुषी कल्पनायें हैं। विषाद और वेदना के कुहासे में लिपटे हुए ये गीत तरुणाई के उस स्वप्निल संसार की झलक देते हैं जो जीवन के यथार्थ से समझौता करने से पहले भावुक हृदय अपने लिये बसाता है। सरस अनुभूति और सरल अभिव्यक्ति इन गीतों का वैशिष्ट्य है। ज्ञान 'शापित कामनाओं' के कवि हैं और भावुकता तथा छंद-प्रयोग भी 'ज्वार' में बच्चन जैसी ही है।

'आकाश कुसुम', ज्ञान भारिल्ल के परिपक्व, अनुभूतिमय, संवेदनशील गीतों का संकलन है। वैयक्तिक सुख-दुःख और आशा-निराशा का स्वर ज्ञान के गीतों में सर्वाधिक उभरा है। वे अतृप्ति के कवि हैं और उनकी चाह अतृप्ति के सीमांतों से टकरा कर अनादृत लौट आती है। ज्ञान के अधिकांश गीतों पर विरहजन्य अवसाद की गहरी छाया है। वह अवसाद भी सौंदर्य की भाव-भूमि से असम्पृक्त नहीं है—

वसंत में, नभ में उड़ते शुभ्र, श्वेत, हल्के बादल सा
भटक रहा मेरा निराश मन
पड़े घर आते शर से बिंध, किसी चीखते विहग सा
चीख रहा मेरा निराश मन

कवि कमलाकर (रामनाथ) के काव्य मे रीतियुगीन प्रवृत्तियों से लेकर अधुनातन युग-बोध तक के दर्शन होते हैं। 'गीत मेरे चरण तुम्हारे' और 'हस-तीर्थ' इनकी प्रकाशित काव्य-कृतिया हैं। कमलाकर आस्थावान कवि हैं और ईश्वर तथा मनुष्य के प्रति उनके मन में अपार श्रद्धा है। प्राचीन साहित्य, दर्शन, वेदान्त व भक्ति साहित्य के अध्येता होने के कारण इनके सृजन पर दर्शन और अध्यात्म का प्रभाव लक्षित होता है। अपने कतिपय गीतो मे कवि ने आध्यात्मिक एव दार्शनिक भावभूमि पर रहस्यमय अन्दाज मे अभिव्यक्ति दी है। उसे मनुष्य के विराटत्व मे प्रबल आस्था है। वह स्वयं को वेद, देवता, प्राण, गगन, कल्पतरु, अमृतपुत्र कह कर अपनी विशालता और व्यापकता का जयघोष करता है—

वेद होकर स्वय बाचना पोथिया
देवता हूं मगर अर्चना कर रहा हू।
जब हृदय मे उठा एक सकल्प तो
बध गई यह प्रकृति बाहुओ मे विवश।
सास ली तो ऋचायें जनमने लगी
मन हसा तो बना चन्द्रमा रस-कलश।
प्राण बन कर समाया हुआ सब जगह
मैं गगन हू मगर कल्पना कर रहा हू।

कमलाकर मूलत. गीतकार हैं। इनके गीतो मे जीवन और सौंदर्य के रगमय, गधमय चित्र प्रस्तुत हुए हैं। 'घूंघट का पट खुल-खुल जाये', 'नींद खुल गई रे', 'चाद को अपलक निहारो' आदि ऐसे गीत हैं जिनमे सहज सरलता, भावात्मकता, लयात्मकता आदि गीतितत्व, पुष्कल मात्रा मे विद्यमान हैं। राजस्थान की एक पूरी पीढ़ी को कमलाकर ने नेतृत्व दिया है। उनके गीतो मे प्रणय निवेदन है, मिलन की आकाक्षा है, इन्द्रधनुषी कल्पनाए और विचरण के लिये कल्पना का, सपनों का उन्मुक्त आकाश है। 'हस-तीर्थ' के गीतो मे आध्यात्म के पुट ने गीतो को निखार दिया है—

बुलबुला खुद लुटा तो समन्दर बना
जो सितारा मिटा वह गगन हो गया।
अब किसी से लगन की जुडी गाँठ तो
गुन जगत ही पिया का भवन हो गया।

कमलाकर ने उर्दू तर्ज पर गजलें भी लिखी हैं, किन्तु उनमे भी उनका आध्यात्म और वैराग्य ही प्रतिध्वनित हुआ है—

जिंदगी राजे हकीकत के सिवा कुछ भी नहीं
जिंदगी एक इबादत के सिवा कुछ भी नहीं
सच तो यह है कि मोहब्बत की बेखुदी के बिना
जिंदगी सांस की आदत के सिवा कुछ भी नहीं।

ज्ञान भारिल्ल—राजस्थान के ललित मधुर गीतकार हैं। 'ज्वार', 'आकाश कुसुम', 'साझ उतरी' आदि उनके चर्चित प्रकाशित काव्य संकलन हैं। 'भावोच्छ्-लित गंधमयी गीतात्मकता', उनके गीतों की विशिष्टता है। ज्ञान भारिल्ल के गीतों में अबाध मुक्तता, आत्मानुभूति, वैयक्तिकता, कल्पना-वैभव, भावुकता, संक्षिप्तता, लयात्मकता, सहजता, संगीतात्मकता अर्थात् गीति के सभी तत्व विद्यमान हैं। 'ज्वार' के गीतों में आत्म निवेदन और जीवन की रूपाकृतियों से प्रेरित कल्पित प्रणयिनी के प्रति हृदय-निवेदन है जो प्रकृति के विभिन्न प्रतीकों से व्यक्त हुआ है। ज्ञान के इन गीतों पर बच्चन के 'निशा निमन्त्रण' और 'एकान्त सगीत' का व्यापक प्रभाव पड़ा है। कवि पीड़ा की हर स्थिति में गाने को उत्सुक है—

ठोकर पर ठोकर खा कर भी
आंसू का ज्वार उठा कर भी
मैं शान्त नहीं बैठा देखो, गाते हैं अब भी गीत मधुर।

इन गीतों में तरुण हृदय का सहज उच्छ्वास है। इनमें यौवन के चाह भरे सपने, अतृप्त कामनायें और इन्द्रधनुषी कल्पनायें हैं। विषाद और वेदना के कुहासे में लिपटे हुए ये गीत तरुणाई के उस स्वप्निल संसार की झलक देते हैं जो जीवन के यथार्थ से समझौता करने से पहले भावुक हृदय अपने लिये बसाता है। सरस अनुभूति और सरल अभिव्यक्ति इन गीतों का वैशिष्ट्य है। ज्ञान 'शापित कामनाओं' के कवि हैं और भावुकता तथा छन्द-प्रयोग भी 'ज्वार' में बच्चन जैसी ही है।

'आकाश कुसुम', ज्ञान भारिल्ल के परिपक्व, अनुभूतिमय, संवेदनशील गीतों का सकलन है। वैयक्तिक सुख-दुःख और आशा-निराशा का स्वर ज्ञान के गीतों में सर्वाधिक उभरा है। वे अतृप्ति के कवि हैं और उनकी चाह अतृप्ति के सीमांतों से टकरा कर सनादुन लौट आती है। ज्ञान के अधिकांश गीतों पर विरहजन्य अवसाद की गहरी छाया है। वह अवसाद भी सौंदर्य की भाव-भूमि से असम्पृक्त नहीं है—

1. ऋतु वसंत में, नभ में उड़ते शुभ्र, श्वेत, हल्के बादल सा
भटक रहा मेरा निराश मन
आ पड़े घर आने शर से बिद्ध, किसी चीखते विहग सा
चीख रहा मेरा निराश मन

2. [illegible]
और [illegible]।

3. [illegible]

'[illegible]' के गीतों की [illegible] है भी कोई विशेष [illegible] नहीं है। इस [illegible] की [illegible] नहीं है और [illegible] का [illegible] है। '[illegible]' कवि का [illegible] है और [illegible] '[illegible] की [illegible]' उनकी [illegible] को [illegible] है। इस [illegible] है, [illegible] पुकारें [illegible] फिर [illegible] मन की [illegible] है। यह [illegible] है कि उनके [illegible] उनका [illegible] बड़ा मधुर है—

1. [illegible] बुझा नहीं हूँ, जीवित हूँ जलता हूँ
बुझता दिया किसी आंगन का, शायद फिर जल जाए।

2. मन की मिट्टी के दीपक का नेह जल चुका
अब प्राणों की बाती भी जल जाने दो।

जहाँ तक गीति शिल्प का प्रश्न है, कवि के गीतों में शब्द और लय का निखार बहु-लित और निखरा रूप मिलता है। छंद पर ज्ञान का असाधारण अधिकार है। वे नि:सन्देह कोमल भावों के श्रेष्ठ गीतकार हैं। सहजता उनके काव्य का सबसे बड़ा गुण है। ज्ञान के गीतों के सम्बन्ध में उन्हीं की एक पंक्ति दोहराई जा सकती है—

गायक हूं मेरे अधरों पर
गीत स्वयं ही आ जाते हैं।

अर्थात् उनमें सहजता और अनायासता है।

डॉ० ताराप्रकाश जोशी—प्रकृति से ही गीतकार हैं। 'कल्पना के स्वर', 'जलते अक्षर', 'समाधि के प्रश्न' और 'शब्दों के टुकड़े' उनकी प्रकाशित काव्य-कृतियां हैं। यौवन और प्रेम से सुवासित गीतों द्वारा जोशी ने गीति-परम्परा को समृद्ध किया है। इनके गीतों की आत्मा रोमेंटिक है लेकिन वह गहरी सामाजिकता और सामयिक सदर्भों से जुड़ी हुई है। 'कल्पना के स्वर' में ऐसे गीतों की बहुलता है जिनमें अपने परिवेश के प्रति जीवंत-बोध के दर्शन होते हैं। 'मुझे शांति के रोने की आवाज सुनाई देती है' कहने के बाद भी 'मुझे पूर्व में अभी सुबह की किरन दिखाई देती है', कह कर वह मन की आस्था तथा 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' के सूत्र को व्यापक अर्थबोध देता है। 'इन्सानों जाग उठो, सुबह का गीत सुनाऊंगा' कह

कर वह जागृति का विहान देता है और 'मन की आंखों से देखो तो यह मेरा मन बुरा नहीं है' कह कर गहरे आत्मीय सम्बन्धों की घोषणा भी करता है। डॉ० हरिचरण के शब्दों मे, 'जोशी के गीतो का स्वर गहरी मानवता और जिजीविषा से जुड़ा हुआ है। वे सामाजिक विभीषिकाओ को पूरे रंग-रोगन के साथ देखते है और इसके बाद जिस मूल्य को संकेतित करते है, वह मानवीय मूल्य से जुड़ने की प्रक्रिया है।'

'जलते अक्षर' मे कवि का स्वर मानवतावादी है। इन गीतो मे पौरुष का चैतन्य है। युग की पीड़ा, घुटन और कुठाओ के सदर्भ मे ये गीत आशा और विश्वास का दृढ सम्बल देते है, कवि संकल्प के स्वर मे कहता है—

> तिमिर के एक भी आरोप का उत्तर नहीं देंगे।
> यही तो वक्त है जब भोर का सपना सजा लें हम।

अपने परिवेश की विषमता का अहसास कवि को बराबर है। इनमे घिरा कभी-कभी वह स्वयं समाधान के लिये प्रश्न पूछने लगता है—

> ये मशीनें, ये चिमनियां, ये धुआं जहरी
> शहर आदमखोर बोलो क्या किया जाये ?
> कुछ अपाहिज साजिशें, बीमार चर्चायें
> खूब करती शोर बोलो क्या किया जाये ?

इस संकलन मे वे 'अकाल गीत' भी हैं जिनकी चर्चा राष्ट्रीय काव्य धारा के प्रसग मे की जा चुकी है। ये गीत अपने समय के प्रामाणिक दस्तावेज है। 'आकाश मे अकाल', 'दोपहरी', 'जलता राजस्थान' आदि गीतो मे अकाल की पीड़ा और परिवेश की भयावहता मुखर हुई है।

ताराप्रकाश का सही रूप उनके गीतो मे मिलता है, नये भावबोध वाली रचनाओं मे नही। उनके काव्य का मूल स्वर मानव-कल्याण की भावना से प्रेरित है। कवि के गीतों मे जो मादकता और फक्कड़ता है वह उसके व्यक्तित्व का ही अंश है। कुंठामुक्त उनका कवि-मन आस्था-पथ से क्षण भर भी विचलित नहीं होता और मानवीय संवेदना के साथ सबके दर्द को सहलाता अपनी मस्ती मे गाये जाता है—

> कुछ सज्ञाहीन सवेरे, कुछ नामहीन संध्यायें
> दिन रात घेरती मुझको, कुछ कलुष भरी छायायें
> मैं इन पर मुस्काता हू
> फिर आगे बढ़ जाता हू।

डॉ० हरीश—राजस्थान के ललित गीतकार हैं। 'धड़कनों के बोल', 'प्रणयिनी' तथा 'मनोहा वतन का' इनकी चर्चित कलाकृतियाँ हैं। हरीश के गीतों में यौवन, रूप, रंग और प्रणय के इन्द्रधनुषी रंग उभरे हैं। गीतात्मकता उनके काव्य को अपनी सहजता के कारण सर्वग्राही बनाती है। हरीश ने अपने गीतों में भोगे हुए हर उन्मादी क्षण को कलात्मक आवरण और वाणी दी है। हरीश ने सामान्यतः पुराने प्रतीकों को लिया है किन्तु कुछ गीतों में नवबोध का स्पर्श होने से बिम्ब योजना भिन्न प्रकार की है। डॉ. के. के. शर्मा के शब्दों में—'हरीश के प्रणय गीतों में भटकन का तीव्र अहसास होता है। लगता है खोज चल रही है और वह पहचानने का प्रयत्न करता है पर पहचान स्वप्न बन जाती है। तृप्ति, पूर्णता और सतोष का भाव हरीश के गीतों में नहीं है। जिसे वह मनभावन मानता है, प्राणों के समान समझता है, वही कंचन की रेखा अंतर्ध्यान हो जाती है। एक करुण अवशता का भाव सर्वत्र परिव्याप्त रहता है।

विगत दशक में राजस्थान के जो नये गीत हस्ताक्षर उभरे हैं, उनमें पं० विश्वेश्वर शर्मा का नाम काफी चर्चित रहा है। फिल्म-जगत में जाने के बाद उनके गीतों को प्रचार-प्रसार का व्यापक माध्यम मिला है। 'बिम्ब बिम्ब चांदनी' और 'अश्विन के धूप बिम्ब' इनकी चर्चित काव्य कृतियाँ हैं। 'बिम्ब बिम्ब चांदनी' के अधिकांश गीतों में यद्यपि नये प्रतीकों व उपमानों का प्रयोग हुआ है किन्तु कहीं कवि परम्परागत रूप चित्रण के व्यामोह से मुक्त नहीं रह सका है। 'सुधि के मोर', 'हिरना कस्तूरी' आदि गीतों में नये प्रतीक आये हैं और 'मन वृन्दावन' में सशक्त साग-रूपक प्रस्तुत है। कवि का यह गीत कल्पना, भाषा, कला-सौष्ठव की दृष्टि से उच्चकोटि का बन पड़ा है। रूपक एवं उपमा के माध्यम से कवि अपने समूचे व्यक्तित्व को ब्रजमण्डल के विस्तृत आयामों तक फैला दिया है। उसका मन वृन्दावन है, *विश्वास 'कान्हा है, सुधियाँ 'गोपियाँ'* हैं और अतृप्त-तृष्णा 'राधा' है। इस वृन्दावन में गीतों के कुंज हैं, *कामना की कलियाँ हैं,* संकल्प राह है, भावना की गलियाँ हैं। कवि ने एकाग्र ध्यान को कदम्ब और साधना को *कालिन्दी मानते हुए जीवन-उपवन में मधुमास की व्याप्ति की कल्पना की है* उसका अटूट निश्चय गिरिराज है, आस्था मंदिर है, अभिलाषा काम वन है, प्रेम वंशी वट है, भक्ति का रास है और स्पन्दन वेणु का स्वर है। मन का साहस बलराम, उन्माद ग्वालबाल, दुर्बलता दैत्य, विद्रोह कंस तथा त्याग-तपोबल व दया क्षमा की भावना नन्द-यशोदा हैं। उसका ज्ञान उद्धव और धर्म भावना अक्रूर है। इस प्रकार उसका समूचा रागमय व्यक्तित्व ब्रजमण्डल का आभास देता है। विश्वेश्वर का यह गीत हिन्दी गीतिकाव्य में अन्यतम है।

विश्वेश्वर के काव्य में सहानुभूति की सहज, स्वच्छन्द अभिव्यक्ति, प्रेम और सौंदर्य की उदात्त भावना एवं शैली-शिल्प में परिपक्वता राहती है। परिवेशगत सजगता, गेयता, छन्द-लाघव, सशक्त छंद बोध, प्रभावशाली बिम्ब योजना, विश्वेश्वर के काव्य को वैशिष्ट्य देते हैं। चिंतन की गहनता और अभिव्यक्ति की सरलता ने इन गीतों को अमरत्व दिया है।

कुमार शिव ने हिन्दी के नव गीतकारों में, बहुत कम समय में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है। 'शस्त्र रेत के चेहरे' उनकी बहु प्रशंसित काव्यकृति है। उनके नवगीतों में परम्परागत व्यामोह, शिल्पिकी भावुकता या आभिजात्य-संस्कार की कृत्रिमता नहीं है। उनमें ताजगी है और प्रकृति तथा प्रणय की रागात्मक अनुभूतियों के साथ-साथ शहरी जीवन की यांत्रिकता एवं तद्जनित ऊब, अलगाव जैसे अहसासों को पारदर्शी शब्द-विधान में विन्यस्त किया गया है। इन गीतों में प्रकृति के प्रति कवि का संवेग और आसक्ति सर्वाधिक तीव्र है। स्वयं कवि के शब्दों में, 'प्रकृति के जिस रूप में भी समझ आई—शब्दों से उसे चित्रित किया। उसमें रंग भरे, लेकिन ये रंग पीड़ा की ओर उभार गये।' कवि का प्रकृति सम्बन्धी दृष्टिकोण जीवन से अधिक निकट, मिट्टी की सौंधी गंध से सम्पृक्त बिम्बों और प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त हुआ है। प्रकृति में भी संध्या के प्रति राग-भाव सर्वाधिक मुखर हुआ है—

1. साँझ गुलाबी आँखों वाली
   काले कपड़ों में लिपटी है।
   शोकमग्न खण्डित शहरों पर
   सजी हुई जिसकी अर्थी है।

2. तुम जिनको गाते हो प्रतिदिन
   लिखे हुए वे दर्दगीत
   इन गीली आँखों के अम्बर में।

के गीतों में समकालीन लेखन और उसकी प्रवृत्तियों का आरोपित आभास सा है। सकलन की लम्बी कवितायें, कथ्यगत 'नैरेशन' की पिटी पिटाई लीक पर होने के कारण अपेक्षित प्रभाव नहीं जमा पातीं। राजस्थान की अद्यतन नवगीत सचेतना के महत्वपूर्ण काव्य-हस्ताक्षरों में किशन दाधीच एक उल्लेखनीय युवा हस्ताक्षर हैं। आधुनिक भावबोध उनके गीतों में विसंगति के माध्यम से उभरता है। विसंगति का यह काव्यात्मक रूप पाठक को 'भाव' और 'विचार' दोनों ही स्तरों पर उद्बुद्ध करता है। 'ब्रजेन्द्र 'रेही' के गीतों का सकलन 'सुधियों की देहरी' प्रणयगीतों का संकलन है जिसमें कवि ने अपने जीवन में होने वाली सभी 'सम्पर्कों की छुवन' को उकेरा है। कवि पदमाकर शर्मा का गीत सकलन 'दर्द मेरा स्वर तुम्हारा' किशोर सुलभ मानस की भावुकतापूर्ण प्रणयानुभूतियों की अभिव्यक्ति है। ये गीत कवि के प्रेमी जीवन से सम्बन्धित हर्षोल्लास और विरह-अवसाद को प्रस्तुत करते हैं। ललित कंठ और कोमल भावनाओं के कवि चन्द्रकुमार 'सुकुमार' के 'गीतों के गांव' में गहरी सामाजिक चेतना है। इनके प्रणय गीतों में अवसाद की वेदना और मिलन का उल्लास व्यक्त हुआ है। रामरतन 'नीरव' कृत 'भीगती सतहों पर' के गीतों को भवानीप्रसाद मिश्र ने 'लाचारी के गीत' कहा। अधिकांश गीतों में दर्द का स्वर केन्द्रीय भाव के रूप में है। कवि सम्मेलनों तथा चित्रपट के माध्यम से एक गीत हस्ताक्षर बड़ी तेजी से उभरा है। नाम है प्रभा ठाकुर इनका सद्य प्रकाशित काव्य संकलन 'बौराया मन' भावुक मन की परिपक्व अनुभूतियों की अभिव्यक्ति है। प्रभा के गीतों में मिठास है और है संवेदना-जगत की तरलता, उन्मेषी स्वप्नों की मादकता और भाषा-शिल्प का तराशा हुआ रूप। प्रभा की काव्य-चेतना जहां एक ओर वैयक्तिक हर्ष-विषाद से जुड़ी है वहां सामाजिकता का हल्का सस्पर्श भी कहीं-कहीं मिलता है। उनकी स्वर-झंकृति, लयात्मकता और गीत माधुर्य ने बहुत कम समय में उन्हें अखिल भारतीय स्तर पर प्रतिष्ठित कर दिया है। उनसे अभी और श्रेष्ठ की अपेक्षा है।

अन्य उल्लेखनीय गीतकार हैं माणकचंद रामपुरिया (मलय) सरजूप्रसाद सैनी (निर्झर) भगवतीप्रसाद व्यास (अन्तर्दर्शन) इन्द्रदेव विद्यार्थी (रथचक्र) श्रीनारायण शर्मा (मन की बातें) अन्तिम गीत (सम्पतराय भटनागर) प्रेमचंद विजयवर्गीय (गूंज रही शहनाई) गौरीशंकर आचार्य (आभा) बालकृष्ण गर्ग (स्वर मेरी वीणा के) गजेन्द्रसिंह सोलंकी (गागर) रमेश सजल (सुधियाँ शेष रह गई) आदि।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि राजस्थान के आधुनिक हिन्दी काव्य में छायावादी गीतात्मकता की परम्परा का सफल निर्वाह हुआ है। राजस्थान की भूमि गीत-रचना के लिये अधिक उपयुक्त सिद्ध हुई है। आत्मा की अन्तरंग भावुकता, भाव-

5
प्रगतिवादी काव्यधारा

छायावादी युग के अन्तिम चरण में पलायन, एकांतिकता तथा घोर वैय-क्तिकता के विरोध में युग की आवश्यकताओं और घुटन भरे वातावरण में, विक-सित मानव-मन की आकांक्षाओं को अभिव्यक्ति देने का प्रबल आग्रह-क्षण प्रारम्भ हो चुका था। युग के परिवर्तित परिवेश का प्रभाव, प्रगतिवादी काव्य-चेतना को बहुत दूर तक प्रभावित करने में समर्थ रहा है। आर्थिक संघर्ष, राजनीतिक संकट समाजवादी प्रभाव, भारत छोड़ो आन्दोलन, सर्वहारा वर्ग के अधिकारों की मांग बंगाल का अकाल आदि कतिपय विशिष्ट परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में प्रगतिवादी काव्यधारा का विकास सम्भव हो सका। छायावादी अतिशय-कल्पना-प्रियता रूमानियत और सूक्ष्म वायवी अभिव्यक्ति के विरोध में जो काव्यस्वर प्रति-ध्वनित हुए, उसने सामाजिकता, यथार्थवादिता और स्वस्थ प्रेम की दिशाओं का संकेत दिया। भारतीय गांधीवाद और पश्चिम के मार्क्सवाद ने बुद्धिजीवियों को नई दिशा में सोचने के लिए विवश कर दिया और हिन्दी के कवियों ने भारतीय परम्परा की पृष्ठभूमि में युग-जीवन की समस्याओं और सत्यों को उद्घाटित करने के लिए सामाजिक चैतन्य को बड़ी जोर से बुलन्द किया। छायावादी काव्य भावात्मक था और उसमें भी विद्रोह तो था किन्तु वह वैयक्तिक सीमाओं में आबद्ध रहा। लक्ष्मीकान्त वर्मा के शब्दों में—"प्रगतिवाद का उद्देश्य उस सामाजिक यथार्थ-वाद को प्रतिष्ठित करना था जो छायावाद के पतनोन्मुख काल की विकृतियों को नष्ट करके एक नये साहित्य और नये मानव की स्थापना करे और उस सामाजिक सत्य को उसके विभिन्न स्तरों को साहित्य में प्रतिपादित होने का अवसर प्रदान करे। वर्ग संघर्ष की साम्यवादी विचारधारा और उस संदर्भ में नये मानव, नये 'हीरो' की कल्पना इस साहित्य का उद्देश्य था। इसकी मूल प्रेरणा मार्क्सवाद में विकसित हुई थी। इसका उद्देश्य और लक्ष्य जनवादी शक्तियों को संगठित करके मार्क्सवाद और भौतिक यथार्थवाद के आधार पर निर्मित मूल्यों को प्रति-ष्ठित करना था। उसकी खोज उस नये मानव की थी जो समस्त पतनशील प्रवृ-त्तियों के विरोध में उपर्युक्त स्थापनाओं को विकसित करके एक 'प्रोलतेरियत'

शासन सत्ता को उखाड़ने का दबाव है। इसकी मूल चेतना अंतर्राष्ट्रीय रूप से प्रगतिशील थी, इसलिए इस साहित्यिक आन्दोलन को प्रगतिशील आन्दोलन के नाम से जाना जाता है। प्रगतिवाद की विशेषता रही सामाजिक चेतना से सम्पृक्त थी। वैयक्तिकता की भावना का लोप और सामाजिक हित चिन्तन की भावना का विस्तार इसका लक्ष्य रहा। डा० महेन्द्र के शब्दों में इस प्रकार प्रगतिशील साहित्य का उद्देश्य जन का आत्मीकरण है।'[2]

राजस्थान की सामाजिक स्थिति पर दृष्टि डालने से पता चलता है कि यहाँ जन सामान्य विदेशी गुलामी की पीड़ा को भोगते-भोगते विद्रोही होता जा रहा था। विजयसिंह 'पथिक', जयनारायण व्यास, माणिक्यलाल वर्मा और अन्य जन-कवियों ने जहाँ एक ओर 'जन' का ध्यान अधिकारों के प्रति सजग कर दिया था वहाँ उसे सामाजिकता के प्रति प्रबुद्ध भी किया था। अंग्रेजों के विरोध के साथ साथ जागीरदार और राजा, सेठ-साहूकार आदि के विरोध में जन भावना आन्दोलन का रूप ले रही थी क्योंकि ये सब शोषक के प्रतीक और शोषण के माध्यम के रूप में पहचाने जा चुके थे। इस प्रकार सामाजिक वैषम्य अव्यवस्थित समाज-व्यवस्था, भ्रष्टाचार व निराशा की भावना ने राजस्थान के कवि-मन को उत्तेजित किया और वह यथार्थ का चित्रण कर, परिस्थितियों के प्रति चेतना जागृत करने के साथ साथ पौरुषेय स्वर में सामाजिक विषमताओं पर प्रहार करने लगा और यथार्थ के धरातल पर सत्य को स्थापित कर सत्य, शिव, सुन्दरम् की नई व्याख्या करने लगा। उसके लिये सत्य था तात्कालिक परिवेश, जिसमें घुटन थी, व्यथा थी। उसके लिये सुन्दर था वह घिनौना और नारकीय जीवन जो प्रांत के कोटि कोटि जन को विवशतापूर्वक जीना पड़ रहा था और उसके लिये शिव का अभिप्राय था उस लक्ष्य की प्राप्ति जो वर्ग-संघर्ष को ध्वनित करके ही प्राप्त किया जा सकता था। पुरातन के प्रति उसकी आस्था डगमगाई। राणा प्रताप और दुर्गादास या ऐसे ही अन्य रणबाकुरे उसे उन सामन्ती परिवेश के प्रतीक प्रतीत होने लगे जिसका सबल और जीवन-दर्शन था विलासिता या जन-शोषण। ईश्वर, धर्म, सब उसे शोषण के माध्यम और पाखंड प्रतीत होने लगे। सत्ता और सत्ताधीश उसकी आखों की किरकिरी बन गये और वह आक्रोशपूर्ण आक्रमण की तय्यारी में दत्तचित्त हो गया। वह आमूलचूल परिवर्तन और इन्कलाब के स्वर बुलन्द करने लगा। नये के प्रति गहरी आस्था का स्वर और विगत के प्रति उपेक्षा एवं ग्लानि का भा भाव, शोषक एवं शोषण के प्रति आक्रोश, और आने वाले कल में सर्वहारा वर्ग की विजय का शखनाद, इनके

काव्य में मुखरित होने लगा। पथिक, व्याम आदि ने अधिकारों के प्रति जागरूक किया था, गांधी-मार्क्स ने विचार को पुष्टता दी और परिवेश ने काव्योचित अभिव्यक्ति के लिये सशक्त भाव-भूमि की रचना की। सुधीन्द्र, मुकुल, गणपतिचन्द्र भंडारी, नंद चतुर्वेदी, शमम, रामगोपाल दिनेश, प्रकाश आतुर, मयूख, मगाराम पथिक, रणजीत, चन्द्र देव, सत्यप्रकाश, शान्ति भारद्वाज 'राकेश', हरीश भादानी, कमलाकर आदि की कविताओं में प्रगतिवादी स्वर बड़ी आस्था के साथ मुखरित हुआ। ये कवि, राजस्थान की प्रगतिवादी चेतना के प्रतिनिधि हस्ताक्षर हैं। इन कवियों की रचनाओं में सामाजिक दायित्व का स्पष्ट बोध प्रतित होता है और ये कवि सामाजिक दायित्व के साथ साथ आत्मा की उस अतरग छवि को चित्रित करने की सामर्थ्य प्रदर्शित करते हैं जो पूर्ववर्ती कवियों में संयोगवश मिल जाय तो मिल जाय।[1]

राजस्थान के प्रगतिवादी हिन्दी काव्य में मानवता की असीम शक्ति की सर्वोपरिता, जन-शोषण का विरोध, धार्मिक कठमुल्लेपन पर प्रहार, स्वस्ति-परिवर्तन के प्रति आग्रह, यथार्थवादी दृष्टि, समसामयिक परिस्थितियों के प्रति जागरूकता, साम्यवाद के प्रति सहानुभूति तथा शोषक के प्रति विद्रोह एवं विध्वंस के भावों की अभिव्यक्ति हुई है। सामन्ती व्यवस्था का नग्न-चित्रण और उसके प्रति आक्रोश की भावना का 'मर्मस्पर्शी' चित्रण ओजमयी शैली में किया गया है। इन कवियों के काव्य में सामाजिक दायित्व की भावना मुखर हुई है। लोकापवाद से भय मुक्त होकर कवि ने सामाजिक और राजनीतिक अन्याय व शोषण का सम्पूर्ण मनोबल के साथ विरोध किया है। 'रक्त दीप' में गणपतिचन्द्र भंडारी ने यथार्थ-चित्रण के माध्यम से आक्रोश की अभिव्यक्ति दी है। 'दीवानी,' 'मिट्टी के पुतले,' 'काँटों का ताज' आदि कविताओं में कवि ने शोषण की क्रूरता को उभार कर, शोषित की दयनीयता का मार्मिक, अनुभूतिपूर्ण चित्रण किया है—

1. साहस कर मांगा दूध कि पट, भीतर से कड़वी डांट पड़ी।
   वे लगे पुन पूजा करने, वह रही बिलखती वहीं खड़ी।
   सिक्कों पर कुंकुम लगा उधर, लक्ष्मी की पूजा होती थी।
   जब बाहर खड़ी एक लक्ष्मी, दाने-दाने को रोती थी।
   भारत माता का एक लाल, जब दूध-दूध चिल्लाता था।
   निर्जीव स्वर्ण के सिक्कों पर, वह दूध उड़ेला जाता था।
   पाषाण दूध में न्हाये पर, बच्चे का पेट रहा खाली।
   हम रहे देखते दीवानी।[2]

[1] कवि भाग-1, स. नन्द चतुर्वेदी की भूमिका।
[2] ले. गणपतिचन्द्र भण्डारी, पृ. 45

2. है पाप, इसी विषमता ने धरती को नरक बनाया है।
मेरी रोटी को छीन, शीश पर तेरे मुकुट सजाया है।
सीने से निकल रही लपटें, बन रहा मरघट है हवन-कुण्ड।
जल रहे जहाँ हवि बन-बन कर, शोषित लोगों के अमित झुण्ड।[1]

'रक्तदीप' कविता में, जो वस्तुतः विषम आर्थिक सम्बन्धों पर एक करुणापूर्ण टिप्पणी है, कवि ने शोषित की दयनीयता और शोषक की अमानवीय वृत्ति को इतिवृत्तात्मक ढंग से प्रस्तुत कर, दोनों के बीच वैषम्य को मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है। शोषित का रूप देखिये—

तन पर एक फटी धुपटी, कुछ इधर फटी, कुछ उधर फटी।
उसमें ही निज कृश तन समेट, जा रही चली सिमटी-सिमटी।
तन फटा हुआ, मन फटा हुआ, हो रहे वसन भी तार-तार।
जिनके भीतर से झांक-झांक, निर्धनता करती है पुकार।
किस शाहजहाँ हत्यारे की, मुमताज बिलखती जाती है।
देखो भारत की भूख स्वयं, साकार सिसकती जाती है।[2]

शोषक का चित्रण कवि ने इन शब्दों में किया है—

है दम्भ खेलता चेहरा पर, गति में पद-पद पर मटकार।
अपनी बर्बरता के गुमान में, चलता है सीना उभार।
उसको न देश से मतलब है, उसको न चाहिये आजादी।
उसकी रोटी बस बनी रहे, चाहे जग की हो बर्बादी।[3]

इस लम्बी कविता में कवि ने अपनी सम्पूर्ण संवेदना और करुणा के साथ शोषित के जीवन-यथार्थ को मुखर किया है। शोषक के कुत्ते को पीने को दूध मिलता है और गरीब मजदूरिन का भूखा-प्यासा लाल, सतृष्ण नेत्रों से उसे ताकता रहता है। 'मैं दूध पिऊंगा, दूध पिला' का करुण क्रन्दन माँ को व्यथित कर देता है और वह चुल्लू में चूना भर कर बच्चे की भूख बुझाने को सचेष्ट होती है-

पर विवश उठी वह कंगालिन, शोषण का चक्र घुमाने को।
अपने बच्चे के आँसू पी, कुत्तों का दूध जुटाने को।
आखिर जब धीरज छूट गया, बच्चे का क्रन्दन सुन सुन कर।
बेटे की भूख बुझाने माँ, लपकी चुल्लू में चूना भर।

1. रक्तदीप—ले. गणपतिचन्द्र भण्डारी, पृ. 65
2. " " पृ. 22
3. " " पृ. 23

हा ! आज दूध के बदले में, कान्हा का जी बहलाने को ।
तैयार यशोदा होती है, चूने का घोल पिलाने को ।[1]

कितनी दीनतापूर्ण विवशता का चित्रण है इन पंक्तियों में । इस विषमता और अन्याय के प्रति आक्रोश जन्मना स्वाभाविक ही है । कवि अंत में उद्‌बोधन के स्वर में कहता है—

मजदूर तुम्हीं जादूगर हो, मिट्टी के महल बना देते ।
हो तुम्हीं शक्ति की महा बाढ़, महलों की जड़ें हिला देते ।
तुम महासृजन, तुम महा प्रलय, अपने बल को पहचान उठो ।
पशुता से लोहा लेने को, फौलादी सीना तान उठो ।
तुम उठो, बढ़ो आँधी बन कर, जग पर भूखों, नंगो छाओ ।
मानव के लोहू से जलने वाले ये दीप बुझा जाओ ।[2]

प्रांत के इन कवियों को 'मिट्टी' ने अपनी ओर विशेष रूप से आकर्षित किया है । धरती की करुण पुकारों की कवि अवहेलना नहीं कर सका और शोषण से मुक्ति के लिये धरती की सार्वभौमिकता और पवित्रता का गुण-गान कर उसे निर्मल एवं भयमुक्त बनाने की कामना करने लगा । 'प्यासी मिट्टी का गीत' में कवि मुकुल ने नये जीवन के निमित्त तूफान का आह्वान करते हुए कहा—

आज फिर तूफान कि धीरज का सागर अकुलाता है ।
मरता मरता इन्सान कि नव जीवन के लिये बुलाता है ।
वह क्रूर गगन कब सुनता है, धरती की करुण पुकारों को ।
घन घोर घटाओ, घिर आओ, अब ढक लो चांद सितारों को ।
मस्ती का आलम रोता है, दर्शन का देश तरसता है ।
भूखा संघर्षण आग लगा, शोलों को लिये बरसता है ।
कैसी यह विषम व्यवस्था है, यों कब तक रोष पुकारेगा ?
कब तक निर्लज्ज बना रह कर, कोई यों लाज उघाड़ेगा ?[3]

कवि सुधीन्द्र ने मनुष्यों और देवताओं की कहानी कहने के बजाय, मिट्टी की व्यापकता, और गरिमा की कहानी कही है कवि की दृष्टि में नक्षत्र, सूर्य, चन्द्र, मेघ आदि सब में मिट्टी की सत्ता विराजमान है । सृष्टि के समस्त चर-अचर पदार्थों में मिट्टी के ही विविध रूप व्याप्त हो रहे हैं । मनुष्य, सभ्यता, कला, साहित्य धर्म, यहाँ तक कि इतिहास और भूगोल भी मिट्टी के अस्तित्व और

1. रक्तदीप-ले. गणपतिचन्द्र भण्डारी पृ. 29
2. " " पृ 30
3. उमग-ले. मुकुल, पृ. 17

नये तराने गाने लगती है, सन्नाटे का मातम डूब जाता है, खेतो की क्यारियाँ अकुलाने लगती हैं और श्रमरत नई पीढ़ी विजयोत्सव का पर्व मनाने लगती है। धरती पर आँख लगाये रखने वाले लुटेरों का मला धरती से क्या वास्ता ? जो धरती को जोतता है, धरती उसकी है,वही उसका स्वामी है धरती और सर्वहारा वर्ग की इस विजय के उल्लास का कुछ अनुभव ही भिन्न है—

तुम तानो सीना, गरदन झुकी करो सीधी
वह देखो, जनता, नये सुरों में गाती है ।
वह देखा, पहली बार धरा मुस्काती है ।
तुम उठो, माँगता युग बसत की अमराई
वह देखो खेतो की क्यारी अकुलाती है ।
अब नहीं बसती रातो का राजा कोई ।
अब नही खेत पर आँसू की रातें सोई ।
ये जो महलो से बद लुटेरे झाँक रहे,
कब इन ने धरती, नीरी, जोती या बोई।
यह हम मेहनत करने वालों की नई पौध
वह देखो, मस्तानी सुगन्ध लहराती है ।[1]

कवि प्रबल आत्मविश्वास के साथ 'धरती के अधिकार' और 'मिट्टी के शृंगार' की बात कह कर 'धरती के फूलो के इतिहास' और 'अन्यायी की तलवार से जूझने' वाली उस नई पीढ़ी के प्रति आश्वस्त होता है जो नया भूगोल और नया स्वप्न-आकाश रच रहे हैं—

तुमने कभी न अब तक देखे ये रेशम से फूल जो,
कितनी कितनी आग जलाये धरती है अधिकार की।
कितनी-कितनी प्यास सजाये मिट्टी के शृंगार की ।
उन फूलों की महफिल से उठती है यह आवाज जो
अब दिन आते हैं धरती के फूलो के इतिहास के ।
आओ, तुम सब को देता हूं मैं अपने मधुमास के।
तुमने कभी न देखी अपनी यह पीढ़ी इन्सान की।
पल पल जूझ रही है जो अन्यायी की तलवार से ।
पल पल नई जिंदगी रचती मरण और मझधार से
उस मेरी पीढ़ी से खुलते नये पृष्ठ भूगोल के
आओ वह सब को देता है नये स्वप्न आकाश के।[2]

1. 15 अगस्त में प्रकाशित नन्द चतुर्वेदी का गीत
2. नन्द चतुर्वेदी का एक गीत

5 उड़े हूण, न धरती ने सब से कहीं पर
लहू चूसने से न हैरान होते ।
जहाँ भी कहीं हों—सभी एक मानव,
न इन्सान हैं, एक इन्सान होते ।
हुआ चाहती है धरा कुंकुमी
सूरज की किरणें बनी आ रहीं ?
समय की अंधेरी गुफा में कहीं,
आज की आग सुनहरी बनी जा रही है ।[1]

आस्था का पतझर, निराशा, पराजय एवं घुटन की अनुभूति के क्षणों में, जीवन का बड़ा गहन रहा है । वर्तमान के प्रति तीव्र असंतोष और उथल-पुथल कर सब कुछ नया रच डालने की कामना को अनेक प्रकार से अभिव्यक्ति दी गई । परिवर्तन की तीव्र इच्छा और क्रांति के प्रति उत्कट लगाव ने कवि की वाणी को सामर्थ्यवान सम्प्रेषणीयता प्रदान की है । 'मैं विप्लव का कवि हूं—मेरे गीत विरजन' कह कर वह सामाजिक अन्यायों और विषमताओं के प्रति तटस्थप्रेक्षक बन कर नहीं रह सकता, इसी लिये उसके प्राण विद्रोही बन कर विप्लव की झंकार गाने लगते है ।

आज विकट कापालिक बन कर
महाप्रलय के शमशान से
मरघट के सोये मुर्दों को जगा रहा हूं
जगा रहा हूं अभिनव की वह ज्वाला निरंतर
जिसमें जल कर स्वयं भस्म हो जाय पुरातन ।
मैं विप्लव का कवि हूं, मेरे गीत विरतन ।[2]

स्वतंत्रता के बाद जिस तरह का दूषित परिवेश इस देश में बना, वह संजोये गये सपनों के अनुकूल नहीं था । स्वयं शासक-वर्ग दायित्वहीन व्यवहार करने लगा और स्वतंत्रता की अग्नि मुट्ठी भर लोगों के बंगलों में कैद होकर रह गई । मजदूर और दुःखी हो गया और चन्द गिने चुने धन्ना-सेठ और समृद्ध होते चले गये । एक ओर भुखमरी, गरीबी, अभाव, सन्त्रास, बेरोजगारी और दूसरी ओर वैभव का अभद्र प्रदर्शन । विदेशियों की सत्ता थी तब भी गोलियाँ और यातनायें, शोषण और पीड़ा और जब अपनों का राज आया तब भी स्थिति में कोई विशेष अंतर नहीं । सन् ४७ के बाद का एक दशक और उसकी घटनायें इस कथन का प्रमाण

1. बादल और बाँसुरी—शलभ पृ. नौ7
2. विप्लव-गान—ले. मनुज देपावत

हैं। ऐसी स्थिति मे कवि का आक्रोशित होना स्वाभाविक ही था। उस समय सत्ता के प्रतीक थे नेहरू और उन्ही को चुनौती देना हुआ कवि गर्जन कर उठा—

> 'मुवाणा' के शहीदो की कसम झुमरी तलय्या की,
> तुम्हारे राज मे डायर के फायर याद आते है।
> तुम्हारे राज मे बंगाल का कंकाल बिकता है
> तुम्हारे राज मे बिड़ला के बेटे मुसकराते हैं।
> यहाँ फुटपाथ पर इन्सान का परिवार बसता है
> करोड़ो का बसेरा है खुले आकाश के नीचे।
> ठिठुर कर ठड मे जो तोड देते दम ये सच मानो
> बगावत बन रही है आज उनकी लाश के नीचे।
> पनपती है यहाँ अब बेरोजगारी, चोर बाजारी
> कि हिन्दुस्तान की सतान रोटी को सिसकती है।
> न भूलो ब्यौगकाइशेक की अशराफ़ थमकीली
> शिकागो के किसी होटल मे लटकी राह तकती है।[1]

एक ऐसी ही अनुभूति का क्षण और भी, जब उसे अपने धर्म और देश तक से घृणा होने लगती है—

> नफरत है मुझे अपने देश से
> जहाँ बचपन भीख माँगते हुए जवान होता है
> और जवानी गुलामी करते करते बुढ़िया जाती है।
>
> ❀ ❀ ❀
>
> जहाँ पुस्तकगर्भी अंगुलियाँ
> बर्तन माँज माँज कर घिस जाती है
> और स्पुतनिक बना सकने वाले दिमाग
> पत्थर ढो ढो कर भोडे हो जाते हैं।
> जहाँ पृथ्वी की परिक्रमाएं कर सकने वाली बेलगितनाए
> भारी जेबो और ऊंची कुर्सियों के आसपास भिनभिनाने वाली
> 'कौलरे' बन जाती है।
> नफरत है मुझे अपने धर्म से
> मेरा धर्म पत्थरो और पोथियो के आदेशो का धर्म है
> फटे हुए कानो और मुंडे हुए केशो का धर्म है

1. 'जयहिंद' के 25 सितम्बर 50 के अंक मे प्रकाशित बशीर अहमद 'मयूख' की कविता का अंश

प्रति स्पष्ट आग्रह प्रतीत होता है। 'ये सपने ये प्रेत' में रणजीत ने 'मर गया ईश्वर', 'कामरेड सिर्फ एक शब्द नहीं' तथा 'गद्दार की स्वीकारोक्तियाँ' में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से साम्यवादी स्वर ही प्रस्तुत किया है। कवि ने अपने अन्तर्मन की ओर अपने परिवेश की क्षुद्रताओं को और पाखण्डों को अपने व्यंग्य का विषय बनाया है।[1] इसी प्रकार दयाकृष्ण 'विजय' पर परम्परावादी मान्यताओं व जनसंघी मतव्यों का प्रभाव स्पष्टतः लक्षित होता है।[2] नंद चतुर्वेदी लोहिया के समाजवादी विचारधारा से प्रभावित हैं अतः उन्होंने 'नव-मानवतावाद' के स्वर को अपेक्षाकृत अधिक कलात्मक विधि से अभिव्यक्त किया है। राजनीतिक दृष्टिकोण के आधार पर नंद चतुर्वेदी, मयूख, चन्द्रुल, गंगाराम 'पथिक' रणजीत, जगदीश चतुर्वेदी, शांति भारद्वाज आदि ने तीखे व्यंग्य प्रस्तुत किये हैं। शांति भारद्वाज की 'टैक्सों से पीड़ित प्रजा की कन्हैया के नाम पाती' तथा 'किस्मत की बुलन्दी है', चन्द्रदेव कृत 'पण्डितजी गजब हो रहा है' तथा जगदीश चतुर्वेदी के 'नेहरू के नाम', 'तिरंगे के नाम', 'मतदाता के नाम', 'राज-मुद्रिका के नाम' आदि पैम्फलेटनुमा लघु कृतियाँ सशक्त व्यंग्य के अच्छे उदाहरण हैं। गंगाराम 'पथिक' 'जय बाबू बाजार की' तथा 'राम राज में सब चलता है' इसी कोटि की कविताएँ हैं। भवानीशंकर विनोद 'विनोद' की 'हास्यमेव जयते' तथा 'इसीलिए तोंद को नमस्कार है', में बड़े चुटीले व्यंग्य हैं। उनमें आधुनिक समाज की असंगतियों को कविता की विषय-वस्तु बनाया गया है। 'चमचा पुराण', 'रिश्वत', 'दल-बदलू'[3] तथा 'चंदे के बंदे'[4] आदि में राजनीतिक विद्रूपताओं की अच्छी खबर ली गई है। स्व. चन्द्रदेव शर्मा के व्यंग्यों में बड़ा पैनापन है। 'मुर्दों का देश हमारा है, जनमों का देश हमारा है' 'मिसेज लन्दन के प्रति' 'गोबर–युग' आदि कविताओं में कवि ने देश की विद्रूपताओं और असंगतियों पर व्यंग्य के नश्तर लगाये हैं।[5]

यद्यपि प्रगतिवाद विशेष रूप से मार्क्सवाद से प्रभावित रहा है किन्तु इस वाद-विशेष की अन्तर्दृष्टि और प्रतिपादित मान्यताओं का राजस्थान के हिन्दी कवियों ने केवल सतही-स्पर्श किया है। वैसे द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का आधार तो शायद ढूंढने पर भी नहीं मिले, केवल भौतिकता और बौद्धिकता को ही, एक निश्चित सीमा तक, यहां का कवि मार्क्सवाद के नाम पर ग्रहण कर सका है। रणजीत के पास अपेक्षाकृत अधिक गहरी दृष्टि है और मार्क्सवाद का स्वर, सबसे

1. ये सपने ये प्रेत–डा. रणजीत पृ 10, 21, 33, 48
2. द्रष्टव्य अन्तरिका–ले दयाकृष्ण 'विजय' की कुछ कविताएँ
3. इसलिए तोंद को नमस्कार है–ले. भवानीशंकर 'विनोद' पृ 9, 11, 14
4. हास्यमेव जयते–ले वही पृ. 70
5. पण्डितजी गजब हो रहा–ले. चन्द्रदेव शर्मा पृ 6, 16, 57

अधिक उन्हीं के काव्य में मुखर हुआ है। अधिकांश ने शोषण के प्रति आक्रोश को आवेगमयी अभिव्यक्ति ही दी है।

प्रणय के क्षेत्र में राजस्थान के प्रगतिवादी कवियों पर अंचल और नरेन्द्र शर्मा का प्रभाव लक्षित होता है। प्रगतिवादी प्रणय का क्षेत्र अपेक्षाकृत सीमित है और कवि ने सामाजिकता के सन्दर्भ में अपनी वैयक्तिक प्रणयानुभूति को चित्रित किया है। इन कवियों ने सामाजिक उत्तरदायित्व के परिप्रेक्ष्य में ही प्रणय का महत्व स्वीकार किया है। अधिकांश कवि, इससे पूर्व, छायावादी–गीतिधारा से जुड़े रहे अतः इन्होंने प्रणय-निवेदन की रागात्मकता का सामाजीकरण करने का प्रयत्न किया है। उनका प्रणय वर्णन एकांतिक नहीं, सामाजिक सदर्भों से युक्त प्रेम है। वह लोकपक्ष से शून्य नहीं है। प्रेम के प्रति उसकी दृष्टि स्वस्थ्य और सतुलित रही है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

1. बाँसुरी कैसे बजाऊँ मैं प्रणय की,
   जब प्रलय की सुन रहा हुंकार मैं।
   ओठ से कैसे कहो मैं मुस्कराऊँ,
   सुन रहा हूँ जब करुण चित्कार मैं।
   आज जाने दो कि जन-संकट बुलाता है मुझे,
   लौटकर जीता करूंगा बात तुमसे प्यार की।[1]

2. अभी सृष्टि पर आँसू की भीगी रात है,
   तुम कहते तो गीत लिखूं मधुमास के।[2]

3. रानी छोड़ो गीत मिलन के, आज सुनेंगे नया तराना।[3]

4. आज नहीं है समय प्रणय के गीत रचूं मैं,
   आज मुझे श्रमदेवी का पूजन करने दो।
   इस मिट्टी से आज नया अवतार उठेगा,
   आज मुझे इस धरती का वन्दन करने दो।
   इस धरती के घावों में तुम मरहम भर दो,
   मैं समझूंगा तुमने जीवन–ज्योति जलाई।[4]

---

1. स्वर्णकिरण में सुधीन्द्र का गीतांश।
2. वही, मन्द चतुर्वेदी का गीतांश।
3. 'अमर ज्योति' 6 अगस्त 54 में प्रकाशित प्रकाश आतुर के गीत की तीसरी पंक्ति।
4. 'प्रगति' में प्रकाशित प्रकाश आतुर का गीतांश।

प्रीति और निर्धनता के अंतर की अनुभूति होते ही झुंझला उठता है और कहता है—

> 5. प्रीति बनी निर्धन के रत्नों की ढेरी,
> चौंक-चौंक जाता हूँ शाप तुम्हारा है।
> मन्दिर के हर द्वार चूमने को आतुर,
> मैं हूँ एक पुजारी, पाप तुम्हारा है।
> कण्ठ कैद है पायल की हर रुनझुन का,
> जब देहरी पर मौत मर्सिया गाती है।
> मंजिल से आवाजें तुम्हारी आती हैं।[1]

छायावादी कवियों की भांति इन कवियों के समक्ष, कला केवल कला के लिये नहीं है अपितु उसकी जीवन एवं समाज के लिये उपयोगिता भी है। मनुष्य के प्रति गहरी आस्था होने के कारण कवि का विश्वास रहा है कि केवल अन्तर्मन की पुकार, पलायन है। जो कविता जीवन के विरुद्ध चलती है वह विपथगामिनी है। कवि तो केवल सामाजिक सदर्भों से ही अपना नाता घोषित करता है और आग्रह करता है कि चाहे उसकी प्रतिभा को स्वीकार न भी किया जाय, किन्तु उसके व्यक्तित्व को व्यक्ति-मात्र की चाहों से न जोड़ा जाय। मनुष्य के प्रति आस्थाशील होने के कारण कवि मानवतावादी हो गया है। उसकी दृष्टि का क्षितिज सीमाहीन हो गया है। रणजीत कृत 'तुम्हारे लिये', 'मुकुल' कृत 'पथ सधान' नन्द चतुर्वेदी कृत 'समय की रेत', दिनेश कृत 'बगिया की दो बहार' आदि कविताएँ इन्हीं भावनाओं को व्यक्त करती हैं। रणजीत की दृष्टि का आयाम बड़ा विस्तृत है—

> मैं मनुष्य का गायक हूं
> मनुष्य अपने तमाम रूप रंगों और ढंगों में मनुष्य ही
> मेरी कविताओं का विषय है और वही उद्देश्य।
> मैं सब मनुष्यों का गायक हूं।[2]

मुकुल का इस संबंध में दृष्टिकोण बहुत स्पष्ट है—

> जीवन के विरुद्ध जो चलती वह कविता कुलटा है,
> कला नहीं उसकी मनति है, आराधन उलटा है।
> ✲ ✲ ✲
> सामाजिक संबंध मात्र, केवल है मेरा नाता।
> मैं गाता हूं युग जब मेरे साथ है गाता।

1. 'समय की धार'—ले. शांति भारद्वाज 'राकेश' का एक गीतांश।
2. इतिहास का दर्द—ले० रणजीत, पृ. 30

मुझे भुजाओं के बंधन में स्वीकारो या छोड़ो ।
लेकिन मुझ को व्यक्ति मात्र की चाहों से मत जोड़ो ।
मैं हूं उष्ण रक्त की गर्जन, निष्क्रिय शीत नहीं हूं ।
अर्थहीन ध्वनि मात्र और केवल संगीत नहीं हू ।[1]

चतुर्वेदी ने उन सृजनधर्मियों को अपनी प्रणति अर्पित की है जो अपने युग को ... रूप देने के लिये अथक श्रम कर रहे हैं । कवि उनके प्रति आभार व्यक्त करता ... शब्द द्वारा, शिल्प द्वारा अथवा खेतों, खलिहानों, कारखानों के माध्यम से ... नया इतिहास रच रहे हैं । कवि ने उन्हें 'सृजन का देवता' कह कर ... घोषित किया है । समय को गति देकर और उसके रूप को सवारने-सजाने के लिये ... लोग जुटे हुए हैं, कवि ने उन्हें अपने श्रद्धा-सुमन अर्पित किये हैं—

इस समय की रेत पर तुम कौन हो ?
जो गढ़ रहे हो, वह न जो देखा गया है
वह न जो जाना गया है, कौन हो सच ?

❀ ❀ ❀

तुम जहाँ हो और जो भी हो
तुम अपरिचित हो कि परिचित हो
रास्ते पर हो कि तुम हो मंजिलों पर
खेत पर हो या कि मिल में हो
लिख रहे हो, बोलते हो, छापते हो
सार यह है रच रहे हो
सृष्टि के एकान्त अनजाने क्षणों को
प्रणति मेरी लो
समय की धार पर जो भी खड़े हो ।[2]

कवि दिनेश की दृष्टि उदारतावादी है । 'उदार चरितानां, वसुधैव-कुटुम्बकं, उनके कवि का प्रेरक-सूत्र है । 'हर बगिया को बहार' और हर पतझड़ में मधुमास' बनने का आग्रह ... आग्रह है—

जो गली भरी हो काँटों से, चुन चुन कर सुमन बिछा दो तुम।
जो फूल भटकते मिलने को, बन रस की धार मिला दो तुम।
कुछ उतर ग्रहं के शिखरों से, धरती की प्यास बुझाओ तुम।
निर्झर बन सकते नही अगर, तो बादल बन लहराओ तुम।
जीवन के मरुथल मे साथी, हरियाली का त्योहार बनो।
हर एक कली को मौसम दो, हर डाली का श्रृंगार बनो।[1]

सुमनेश जोशी ने 'नियति-क्रम' शीर्षक कविता मे मानव के प्रति गहरी आस्था प्रगट की है और सत्यप्रकाश जोशी ने 'एटम परीक्षण' में इसी आस्था को संतप्त स्वरों में प्रकट किया।

एक दिन फूलों मे लाली नही होगी
खेतो मे धान की बाली नही होगी
वर्षा तो होगी, हरियाली नहीं होगी
लूले लगड़े जन्मेंगे, अंधे-बहरे पनपेंगे
और एक दिन
नारी तो होगी, माँ नहीं होगी
पुरुष तो होगा, बाप नही होगा
भाई नहीं, चाचा नहीं, ताई नहीं
प्रेम नहीं होगा, परिवार नहीं होगा।[2]

इसी प्रकार चौराहे पर खड़े सिपाही के प्रति गहरी संवेदना प्रकट करते हुए कवि ने अपनी एक अन्य कविता मे, 'हर चौराहे पर खड़ी हुई, शोषण की जीवित मीनारें' कह कर वर्ग-संघर्ष की अनुभूति को वाणी दी है। डा. दिनेश ने उदजन-बम के विस्फोट पर गहरी चिन्ता व्यक्त करते हुए जंगखोरों को मानवता का शत्रु घोषित किया है—

तुम दुश्मन हो इन्सानों के, ग्रस्त्र शस्त्र की होड़ लगाते।
शांति और सम्पन्न धरा पर सर्वनाश की आग उगाते।[3]

---

1. जलती रहे मशाल—ले. दिनेश, पृ. 10
2. राजस्थान के हिन्दी कवि में—सत्यप्रकाश जोशी का कवितांश।
3. जलती रहे मशाल—ले. डा. दिनेश, पृ. 19

"इसी प्रकार सामाजिक-चैतन्य का स्वर प्रकाश आतुर की कविताओं को भी विशिष्टता प्रदान करता है। जिस स्वर से उन्हें पहचाना जा सकता वह यह है"—

ऐसा पथ अपनाओ जिसने पौरुष को ललकारा हो।
ऐसा सपन सजाओ जिसने समता को अधिकारा हो।
ऐसी जलन जलन जलाओ, जिससे जल जाये यह अर्थ-विषमता
ऐसा पूजो रूप जिसे बहुजन ने स्वयं शृंगारा हो।
आओ निशा हटाता हूं
आओ दिशा बताता हूं
अरुणोदय सी रश्मि बिखेरो, तिमिर अर्गला तोड़ दो।[1]

'सामाजिक चैतन्य की गहरी और विशिष्ट अनुभूति घनश्याम 'शलभ' की कृतियों में निहित है। 'बून्द जो कितनी महान है' में कवि का वक्तव्य है कि इस लघु के विराट समर्पण को कौन जानता है? यह मिट्टी तो मधुमास लहराया, यह काल-मात्र पर गिरी तो न जाने कितने अजर-अमर ग्रंथों की रचना हुई, किन्तु समर्पित बून्द की चिंता किसे है?...... बून्द की इस अकिंचनता में विराट का बोध ही वस्तुतः सामाजिक चैतन्य की कसौटी है।'[2]

ईश्वर और धर्म के प्रति घोर उपेक्षा का भाव, इन प्रगतिवादी कवियों की रचनाओं में मिलता है। वस्तुतः यह प्रभाव मार्क्सवाद का ही है। कवि ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास ही नहीं करता और उसे मृत घोषित कर वैज्ञानिक बुद्धिवाद की प्रतिष्ठा के प्रति आग्रहशील हो उठता है। ईश्वर को वह शोषण एवं शोषक वर्ग का ब्रह्मास्त्र मानता है और उसकी मृत्यु की 'विश-फुल थिंकिंग' पर प्रसन्नता व्यक्त करता है—

हां मर गया ईश्वर कि उसके त्रास सारे मर गये।
सृष्टि के आरम्भ से चलते हुए
आदमी के खून पर पलते हुए
अन्याय के इतिहास सारे मर गये।
❀ ❀ ❀
मर गया ईश्वर, विषमता का सहारा मर गया,
आदमी के हाथ में ही आदमी का भाग्य दे कर

1. राजस्थान के हिन्दी कवि की भूमिका में नन्द चतुर्वेदी का उद्धरण, पृ. 42
2. राजस्थान के हिन्दी कवि की भूमिका में नद चतुर्वेदी का उद्धरण, पृ. 34

विश्व का देवी विधायक मर गया।
साइन्स की किरणों ने मारा, मर गया।
वहम का पर्दा उखाड़ा, मर गया।
आदमी ने जब तलक पूजा अंधेरे में उसे जिंदा रहा
रोशनी के सामने ज्योंही पुकारा मर गया।
खैर अच्छा था, बिचारा मर गया।[1]

कन्हैयालाल सेठिया ने भारतीय चिंतन को अपने गीतों में प्रस्तुत किया है।[2] जैसा चिंतन ईश्वर के संबंध में यह धारणा रखता है—

रूढ़ि रीतियों के चिर यौवन, घृणित वंचना के अवलम्ब।
मूक विवशता की जड़ अर्चा, मानव की श्रद्धा के दम्भ।
मृगमरीचिका की प्रतिछाया, आत्मसमर्पण के उन्माद।
वर्ग-भावना के उद्भावक, मूढ़ जगत के वज्र विषाद।
बल पौरुष के आत्मघात हैं, भक्ति बीन के मलिन राग।
सतत् मूर्च्छना चेतनता की, मौलिकता के मुख के दाग।
दुर्बलता के जिन्दी प्राणों में, जमे बुद्धि पर तमस घोर।
सहज ज्ञान की राह रोकते, बन कर तुम विश्राम कठोर।
क्लीव-कल्पना, निर्मित मिथ्या, [illegible] सृष्टि की पहली भूल।
आह ! बन गया मूर्ख सेवक, बड़ा शूल्य की पूजा भूल।[2]

उपर्युक्त विवेचन के प्रकाश में सारतः कहा जा सकता है कि राजस्थान के कवियों ने प्रगतिवाद की सामान्य प्रवृत्तियों एवं मान्यताओं को तन्मयतापूर्वक लिया है। जन-जीवन और सामाजिकता की भित्ति पर कवियों ने अपनी कविता का ताना-बाना बुना है। राजस्थान के अधिकांश कवियों में, कुछ को छोड़कर मार्क्सवाद की गहरी पकड़ नहीं है, लेकिन उनके काव्य में मानवीयता का स्वर प्रधान रहा है। उन्हें कवियों ने अपनी रुचि अनुसार, [illegible] युग-सत्य को [illegible] रूप में अभिव्यक्ति दी है। [illegible] [illegible] के [illegible] में अनुपम हुई और [illegible] [illegible] इसी कारण [illegible] [illegible] के [illegible] हुआ।

1. इन्सान का दर्द,—डॉ. [illegible] पृ. 28 29
2. [illegible] के [illegible] की कविता '[illegible]'।

शिल्प की दृष्टि से विचार करने पर कहा जा सकता है कि प्रगतिवादी काव्य का शिल्प, छायावादी-शिल्प की तरह चुस्त और भाव-भीना नहीं है। वस्तुत इस धारा के कवियों का कथ्य ही भिन्न था अत. उस पर जनवादी-दृष्टि का प्रभाव पड़ा है। अधिकांश कवियों ने सामान्य-जन की भाषा में काव्य रचना की है और शब्दाडंबर के ललित-जाल से काव्य को मुक्त रखा है। सुधीन्द्र, शलभ, नंद चतुर्वेदी, विजेन्द्र, किसलय, रामगोपाल 'दिनेश', 'मुकुल और कन्हैयालाल' सेठिया की भाषा में कलात्मकता है, लेकिन दुरूहता कहीं नहीं है। प्रगतिवादी काव्य, ग्राम सामान्य-जन के लिये था और उसी के बौद्धिक स्तर का ध्यान रखना भी कवियों का अभिप्रेत रहा है। गीत, मुक्तक कविता, मुक्त-छंद, सभी के माध्यम कवि ने स्वीकारे हैं। रणजीत और नंद चतुर्वेदी के मुक्त छंदों में छंदहीनता होते हुए भी आंतरिक लयात्मकता है। बिम्ब-विधान की ओर कवियों ने अधिक ध्यान नहीं दिया है लेकिन नंद चतुर्वेदी, दिनेश और रणजीत की कुछ कविताओं के बिम्बों में जीवन और जगत के रूप-रंगों का वैविध्य प्रतिफलित हुआ है। व्यंग्यात्मक शैली में कम कवियों ने लिखा है लेकिन जो भी लिखा है वह प्रभावशाली बन पड़ा है। वस्तुत राजस्थान के कवि को पीड़ित और शोषित वर्ग की दयनीयता और तज्जन्य आक्रोश को यथार्थ के धरातल पर रूपायित करना था और इसी दिशा में वह प्रयत्नशील रहा भी है।

प्रमुख प्रगतिवादी कवि—

भरतपुर जिले के वैर गांव के निवासी डॉ० रांगेय राघव (तिरुमल्ल नंबकम राघव ताताचार्य) का नाम हिन्दी साहित्य में कवि, कथाकार, आलोचक, निबंधकार, इतिहासकार, समाजशास्त्री एवं पुरातत्वविद् के रूप में समान रूप से प्रतिष्ठित है। वे हिन्दी प्रगतिवादी आंदोलन के प्रमुख स्तम्भों में से एक रहे हैं। उनके द्वारा रचित काव्यकृतियाँ हैं 'मेधावी', 'अजेय खण्डहर', 'उत्तरायण', 'पांचाली', 'पूर्णकलश', 'राह के दीपक', 'रूपछाया', 'श्यामला', 'महाविजय', 'पिघलते पत्थर', 'पथशिखा', 'बंधन मुक्ता', 'मिटते चिन्ह किरणों के बुहार सो', 'मृत्युंजय ज्वाला', 'यात्रा और कलम', 'कामधेनु' आदि। रांगेय राघव अपने युग के सभी काव्यान्दोलनों से जुड़े रहे। प्रगतिवादी मान्यताओं और प्रवृत्तियों का उन पर गहरा प्रभाव पड़ा है। एक ओर उन्होंने पारम्परिक काव्यशास्त्री सम्प्रदायों पर विस्तार से विचार विमर्श किया, दूसरी ओर काव्य को समाज-सापेक्ष में परखा। कल्पना और वैज्ञानिक चिंतन का समन्वय उनके काव्य में हुआ है। अपने काव्य में वे दार्शनिक, विचारक, चिंतक और भाव-प्रवण मानवतावादी के विविध रूपों में प्रस्तुत हुए हैं। वे विशेष रूप से मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद से प्रभावित रहे हैं। वे प्रगतिवाद के प्रतिनिधि काव्य-हस्ताक्षर हैं और हिन्दी के समूचे प्रगतिवादी

कवियों में एकमात्र ऐसे कवि हैं जिन्होंने प्रबंध-काव्य की भी रचना की। 'अजेय खण्डहर' तो रूस की लाल सेना की प्रत्यक्षतः यशोगाथा ही है। प्रगतिवाद के काव्य-सिद्धांतों का जितना सशक्त निरूपण उनके काव्य में हुआ है उतना अन्य किसी के काव्य में नहीं मिलता। 'प्रगतिवाद' को लेकर उनके तथा डॉ. रामविलास शर्मा के बीच जो घमासान हुआ, वह ऐतिहासिक घटनाक्रम का दस्तावेज है, जिसे हिन्दी प्रगतिवाद की चर्चा करते समय कभी विस्मृत नहीं किया जा सकता।

रांगेय राघव कृत 'राह के दीपक', 'पिघलते पत्थर', 'मेधावी' 'अजेय खण्डहर' आदि का मूल स्वर प्रगतिवादी है। 'राह के दीपक' की कविताओं में कवि ने स्वतंत्रता के संघर्ष और वर्गमुक्त समाज की कल्पना को वाणी दी है। 'पिघलते पत्थर' में वे प्रगतिवाद के प्रतिनिधि हस्ताक्षर के रूप में उपस्थित हुए हैं। इसका मूल स्वर स्वतंत्रता आंदोलन का है और गांधीवाद के समता-दर्शन के प्रति उन्होंने श्रद्धा व्यक्त की है। साम्राज्यवाद और सम्प्रदायवाद पर इसमें जबर्दस्त प्रहार किया गया है। इसमें कवि ने क्रांति का आह्वान करते हुए वर्गहीन समाज का सपना देखा है। डॉ. विश्वम्भर व्यास के शब्दों में, 'डॉ. रांगेय राघव काव्य की भावभूमि का मुख्य लक्ष्य विश्व-मानव रहा है। उनके मानवतावाद का मूल स्वर प्रगतिवादी दृष्टिकोण के माध्यम से प्रकट हुआ है। शोषित मानव को उन्होंने अपनी सहानुभूति दी और शोषक के प्रति असीम आक्रोश व्यक्त किया।'

'मेधावी' रांगेय राघव द्वारा रचित ऐसा महाकाव्य है, जिसके माध्यम से कवि ने 'वसुधैव कुटुम्बकम' का संदेश प्रसारित किया है। ज्ञान-विज्ञान के विभिन्न विषयों को यथावस्तु का आधार बनाकर कवि ने वैज्ञानिक तथ्यों को कल्पना के इन्द्रधनुषी रंगों से शृंगारित किया है। चिंतन प्रधान काव्य होने के कारण इसकी कथा तनु बहुत सूक्ष्म है। सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर उत्तरोत्तर विकास का चित्रण करते हुए कवि ने अधुनातम युग के वर्ग-संघर्ष और सर्वहारा की विजय कामना के स्वप्न को इसमें रूपायित किया है। यह प्रगतिवादी युग की सार्थक, सोद्देश्य, मानव सभ्यता एवं संस्कृति के विकास और मानव की जय से साक्षात्कार कराने वाली उपलब्धि मूलक कृति है।'

'अजेय खण्डहर' कवि-रचित खण्डकाव्य है जिसमें उन्होंने द्वितीय विश्व-युद्ध के एक प्रसंग विशेष को कथा-रूप में चुना है। हिटलर द्वारा लेनिनग्राद पर किये भयंकर आक्रमण और रूस की लाल सेना के अभूतपूर्व पराक्रम का सजीव चित्रण इस खण्डकाव्य में हुआ है। सोवियत रूस की साम्यवादी विचारधारा और सर्वहारा के विजय-घोष को यह कृति सशक्त विधि से रूपायित करती है।

स्व. गणेशीलाल व्यास 'उस्ताद' का काव्य उनके जीवन संघर्ष का दस्तावेज है। उस्ताद पुरानी पीढ़ी के सशक्त ओजस्वी कवि थे। स्वतन्त्रता संग्राम के यातना-भोगी इस कवि की कवितायें एक समय जन-जन के लिये प्रेरणा स्रोत थी। उनकी हिन्दी कविताओं का संकलन 'आग' शीर्षक से प्रकाशित है जिसमें उनकी अग्नि-धर्मा प्रगतिशील रचनायें संकलित हैं। पूर्व में उस्ताद ने स्वतन्त्रता के लिये जूझते रहने की दमकती प्रेरणा देने वाली कवितायें लिखीं लेकिन आजादी के बाद जो मोहभंग की स्थिति बनी उसने उस्ताद के मन को गहराई तक उद्वेलित किया और राजकीय सेवा में होते हुए भी उन्होंने कलम का उपयोग तलवार की तरह खुल कर किया। इसका उन्हें फल भी भोगना पड़ा। आजाद देश की सरकार ने उन्हें मान-सिक और आर्थिक यातना देने के अतिरिक्त और कुछ नहीं दिया।

उस्ताद की कविता का स्वर प्रगतिशील सामाजिक चैतन्य और मोहभंग से उत्पन्न तल्खी और आक्रोश का है। दो टूक बात कहने और व्यवस्था तथा व्यवस्था-पकों पर भरपूर धारदार वार करने में वे कभी नहीं चूके। स्ताद की कविता का भाषा-शिल्प अनगढ़, खुरदरा और कहीं-कहीं व्याकरण सम्मत भी नहीं है लेकिन उनका कथ्य और उसकी भंगिमा के सामने भाषा-शिल्प वैसे भी बौना लगता है। इसकी उन्हें चिन्ता भी नहीं थी। वे समाज-परिवर्तन की प्रक्रिया और उसके माध्यम के रूप में कविता को गढ़ रहे थे। उनकी कविता अग्निधर्मा है जो जीवनानुभवों को चमक देती है। सामाजिक वैषम्य, वर्ग-भेद और शोषण के विरुद्ध उनकी कविता विद्रोह का दस्तावेज है।

कवि मेघराज 'मुकुल' के काव्य का मूल स्वर सामाजिक चैतन्य का है। वे इस प्रांत के ओजस्वी प्रगतिवादी गीतकार हैं। आस्था और उमंग का स्वर उनके काव्य की विशेषता है। 'उमंग' की भूमिका में कवि ने कहा है—"मैंने अपने जीवन में एक सामंती परिवेश में रहने के कारण अनेक परिवर्तन देखे हैं। मेरी इन कवि-ताओं में परिवर्तनकारी अवस्थाओं का बड़ा आश्चर्यजनक अनमिल मेल है। मेरी काव्य-साधना प्रत्येक क्षण, युग की करुण विदारक वेदना को उत्कृष्ट कलात्मक अभिव्यक्ति के लिये समर्पित है।" मुकुल की अधिकांश कविताओं में विद्रोह का बिगुल बजा है। 'भारत वंदना' करते हुए कवि ने देश की श्रमजीवी जनता को ही 'भारत माता' कह कर सम्बोधित किया है। जनता की जय, सर्वहारा की विजय है, जिसके समक्ष शोषण व अवसरवादिता घुटने टेक रही है। किसान व विज्ञान उसकी शक्ति है, मजदूर मेरु दण्ड है और शोषित की विजय ही भारत माता की विजय है। मुकुल ने अपने गीतों को सामाजिक संदर्भों से जोड़ कर अपने काव्य-क्षितिज का विस्तार किया है। कवि ने अपना सम्बन्ध सामाजिकता के साथ घोषित किया है और कला की उपयोगिता को केवल, समाज-सापेक्ष्य दृष्टि से ही महत्वपूर्ण

कवियों में एकमात्र ऐसे कवि हैं जिन्होंने प्रबंध-काव्य को [illegible]
खण्डहर' को कम की मान लेना की प्रयत्न' [illegible]
काव्य-सिद्धांतों का जितना सशक्त निरूपण उनके काव्य में हुआ [illegible]
किसी के काव्य में नहीं मिलता। 'प्रगतिवाद' को लेकर उनके [illegible]
शर्मा के बीच जो घमासान हुआ, वह ऐतिहासिक घटनाक्रम का [illegible]
हिन्दी प्रगतिवाद की चर्चा करते समय कभी विस्मृत नहीं किया जा [illegible]

रांगेय राघव कृत 'राह के दीपक', 'पिघलते पत्थर', 'मेरे
खण्डहर' आदि का मूल स्वर प्रगतिवादी है। 'राह के दीपक' में
कवि ने स्वतंत्रता के संघर्ष और वर्गमुक्त समाज की कल्पना को [illegible]
'पिघलते पत्थर' में वे प्रगतिवाद के प्रतिनिधि हस्ताक्षर के रूप में [illegible]
इसका मूल स्वर स्वतंत्रता आंदोलन का है और गांधीवाद के [illegible]
उन्होंने श्रद्धा व्यक्त की है। साम्राज्यवाद और सम्प्रदायवाद पर [illegible]
प्रहार किया गया है। इसमें कवि ने क्रांति का आह्वान करते हुए [illegible]
का सपना देखा है। डॉ. विश्वम्भर व्यास के शब्दों में, 'डॉ. रांगेय राघव
भावभूमि का मुख्य लक्ष्य विश्व-मानव रहा है। उनके मानवतावाद [illegible]
प्रगतिवादी दृष्टिकोण के माध्यम से प्रकट हुआ है। शोषित मानव [illegible]
अपनी सहानुभूति दी और शोषक के प्रति असीम आक्रोश व्यक्त किया।'

'मेधावी' रांगेय राघव द्वारा रचित ऐसा महाकाव्य है, जिसमें [illegible]
कवि ने 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का संदेश प्रसारित किया है। ज्ञान-विज्ञान [illegible]
विषयों को कथावस्तु का आधार बनाकर कवि ने वैज्ञानिक तथ्यों को [illegible]
इन्द्रधनुषी रंगों से शृंगारित किया है। चिंतन प्रधान काव्य होने के कारण [illegible]
कथा तत्तु बहुत सूक्ष्म है। सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर उत्तरोत्तर विकास का [illegible]
करते हुए कवि ने अधुनातन युग के वर्ग-संघर्ष और सर्वहारा की विजय [illegible]
स्वप्न को इसमें रूपायित किया है। यह प्रगतिवादी युग की सार्थक, [illegible]
सभ्यता एवं संस्कृति के विकास और मानव की जय से साक्षात्कार करने [illegible]
उपलब्धि मूलक कृति है।'

'अजेय खण्डहर' कवि-रचित खण्डकाव्य है जिसमें उन्होंने द्वितीय विश्व [illegible]
के एक प्रसंग विशेष को कथा-रूप में चुना है। हिटलर द्वारा लेनिनग्राड पर [illegible]
भयंकर आक्रमण और रूस की लाल सेना [illegible] का सजीव चित्र[illegible]
इस खण्डकाव्य में हुआ है। सोवियत [illegible]
के विजय-घोष की यह कृति [illegible]

टिप्पणी प्रस्तुत की है। वस्तुत भण्डारी जनकवि हैं और जन आकांक्षाओं की तृप्ति ही उनका काम्य रहा है अत कला की बारीकी या शिल्पगत चमत्कार उनमें नहीं है लेकिन आम आदमी के हर्ष-विषाद, आशा-निराशा और आस्थावान भविष्य के इन्द्रधनुषी रंग और धारदार तेवर, उनकी कविता मे है।

गीति काव्य की चर्चा मे कवि डॉ रामगोपाल शर्मा 'दिनेश' ने 'संघर्षों के राही' में भारत के सामान्यजन की पीडा, मानसिक अन्तर्गति और द्वन्द का चित्रण किया है। निराशा और घोर अंधकार मे मानवीय वृत्तियों को उद्‌बुद्ध करके, विनाशकारी तत्वों का विनाश करके, लोकमंगलकारी तत्वों की सृष्टि करने और अपनी शक्ति को पहचान कर अपनी समृद्धि की प्रेरणा इन रचनाओ मे सर्वत्र व्याप्त है। 'जयघोष' की कवितायें अपने समय की चेतना का इतिहास है। 'जलतो है मशाल' की कवितायें अपेक्षाकृत अधिक परिपक्व है। इनमें शोषण व वैषम्य का प्रतिरोध करते हुए मनुष्य की विजय के प्रति आस्था का स्वर है जो मूलत मानवतावादी है। कवि ने इन कविताओ मे हर स्तर पर होने वाले शोषण का विरोध किया है। कवि परिवर्तन के प्रति उत्कंठित है अत वह क्रांति का आह्वान करता हुआ शोषक वर्ग को चुनौती देता है। संकलन की कविताओ म उच्चकोटि की लयात्मकता और शिल्पविधान है।

श्री. घनश्याम 'शलभ' रूप और प्रणय की मधुर गीतकार तो है ही लेकिन साथ ही वे मानवतावादी कवि भी हैं और सामाजिकता उनके काव्य का परिवेश है। वे प्रणय गीतों के सक्षम शिल्पी होने के साथ-साथ शोषित वर्ग के सौन्दर्यवादी पक्षधर भी हैं। 'आज की आस', 'ज्योति विहग', वसन्त की धूप', 'मत मुझे पुकारो', 'शेष प्रश्न' आदि कविताओं में सामाजिक चैतन्य का स्वर है जिसे कवि ने अपनी सौंदर्यचेतना से समन्वित किया है। 'धरती का सरगम', 'अंधरे के जुगनू' आदि में सकलित कवितायें प्रगतिवादी धारा का प्रतिनिधित्व करती है। शलभ लोकधर्मी चेतना के गायक कवि हैं और अपनी प्रारम्भिक रचनाओं में वे मार्क्स मे विशेष रूप से प्रभावित रहे हैं।

बीकानेर निवासी श्री गंगाराम 'पथिक' आक्रोषी पीढ़ी के दमदार कवि हैं। 'धुंआ उठ रहा है' उनका प्रकाशित काव्य-संकलन है। इन कविताओं में कवि ने आशा, निराशा, विद्रोह, कुंठा आदि को जो अभिव्यक्ति दी है वह पूरे मंकुठित भाव से दी है। उन्मुक्तता पथिक की सबसे बडी विशेषता है। इस संकलन की कुछ कवितायें पारम्परिक प्रणय-निवेदन और आशा-निराशा की अभिव्यक्ति हैं लेकिन बाद की कविताओं मे उनका स्वर एकदम बदला जाता है। वे अदम्य आशा और विश्वास का स्वर बुलन्द करने लगते हैं—

माना है। कुसुम ने अधिकांश कविताओं में शोषण के विरुद्ध आवाज उठाई है कवि की दृष्टि मानवतावादी रही है और सामाजिक चैतन्य ने उनके काव्य को ओजस एवं प्रभावशाली बनाया है।

कवि नन्द चतुर्वेदी के गीति-पक्ष पर पिछले अध्याय में चर्चा की जा चुकी उनकी सामाजिक विचारधारा लोहियावादी है अतः समाजवाद और नवमानवतावाद उनके कवि का काम्य है। यही उनके कृतिकार को सामाजिकता और दायित्व-बोध की परिधि में ले आता है। कवि प्रणय के गहरे एकांत क्षणों में भी अपनी प्रबुद्ध चेतना के कारण स्वयं को इस परिधि के सीमान्तों तक विस्तृत करता चलता है। 'शरद की चाँदनी रात' में वह 'सरल मुस्कान' और 'नत-नयन के मौन का मधुगान' यद्यपि भूल नहीं पाता किन्तु 'लाना है मुझे नव प्रात' के लक्ष्य को ही सर्वोपरि मान कर चलता। नन्द चतुर्वेदी की यह सामाजिकता, उनके युगबोध और कृतिकार के दायित्वबोध के कारण ही है। वे 'नवमानवतावादी' विचारों के पक्ष साधक हैं और उनके काव्य में मनुष्य की अपराजेय शक्ति का स्वर मुखर हुआ है। वे समाजवादी विचारधारा के पोषक कवि हैं और लोहिया दर्शन से प्रभावित होने के कारण उनके काव्य में सामाजिक वैषम्य, जन-शोषण, धार्मिक कठमुल्लेपन और शासक वर्ग की निरकुशता के प्रति तीव्र आक्रोश की अभिव्यक्ति मिलती है। सामाजिक वैषम्य की कड़ुवाहट ने उनके कवि-मन को 'ऐंग्रेसिव' बनाया है और इसीलिये उनका प्रगतिवादी काव्य इतनी तल्खी लिये है। 'धन का अजगर', 'लोक देवता', 'धरा मुस्काती है', 'धन्यवाद', 'समय की रेत पर', 'मेरे स्वप्न' आदि कविताओं में सामाजिक चेतना पूरी प्रखरता से मुखर हुई है। वैसे इनके प्रणय गीतों में भी सामाजिकता का संस्पर्श है।

राजस्थान की पुरानी पीढ़ी के सशक्त ओजस्वी कवि श्री गणपतचन्द्र भण्डारी के काव्य में शोषक और शोषण के विरुद्ध तीव्र आक्रोश की अभिव्यक्ति हुई है। 'रक्त-दीप' में कवि ने युगीन समस्याओं और सामयिक जीवन-प्रश्नों को जागरूक कलाकार की दृष्टि से देखा। इनकी शैली इति वृतात्मक है किन्तु जीवन शब्द-चित्र उपस्थित करने में उन्हें कमाल हासिल है। उनके काव्य का मूल स्वर प्रगतिवादी है और उन्होंने समाज में व्याप्त विषमता, शोषण और भ्रष्टाचार पर जम कर प्रहार किया है। उनका कवि-मन असामाजिक तत्वों का विरोध करने और उनका मुखौटा उतार कर फेंक देने में निरन्तर आक्रोशी और गतिशील रहा है। 'रक्त-दीप' की अधिकांश कविताओं में कवि की सामाजिक चेतना का स्फुरण मिलता है। अन्याय और शोषण का कवि ने उग्रतापूर्ण विरोध किया है। 'दिवाली', 'मिट्टी के पुतले', 'रक्त-दीप', 'डावडा काण्ड', 'काँटों का ताज' आदि कविताओं में कवि ने विषम आर्थिक सम्बन्धों पर करुणाजनक और कभी-कभी आक्रोशमयी

टिप्पणी प्रस्तुत की है। वस्तुत' भण्डारी जनकवि हैं और जन-आकांक्षाओं की तृप्ति ही उनका काम्य रहा है अतः कला की बारीकी या शिल्पगत चमत्कार उनमें नहीं है लेकिन आम आदमी के हर्ष-विषाद, आशा-निराशा और आस्थावान भविष्य के इन्द्रधनुषी रंग और धारदार तेवर, उनकी कविता में हैं।

गीति काव्य की चर्चा में चर्चित डॉ. रामगोपाल शर्मा 'दिनेश' ने 'संघर्षों के राही' में भारत के सामान्यजन की पीड़ा, मानसिक भ्रान्ति और द्वन्द्व का चित्रण किया है। निराशा और घोर अंधकार में मानवीय वृत्तियों को उद्बुद्ध करके, विनाशकारी तत्वों का विनाश करके, लोकमंगलकारी तत्वों की सृष्टि करने और अपनी शक्ति को पहचान कर अपनी समृद्धि की प्रेरणा इन रचनाओं में सर्वत्र व्याप्त है। 'जयघोष' की कवितायें अपने समय की चेतना का इतिहास है। 'जलती रहे मशाल' की कवितायें अपेक्षाकृत अधिक परिपक्व है। इनमें शोषण व वैषम्य का प्रतिरोध करते हुए मनुष्य की विजय के प्रति आस्था का स्वर है जो मूलतः मानवतावादी है। कवि ने इन कविताओं में हर स्तर पर होने वाले शोषण का विरोध किया है। कवि परिवर्तन के प्रति उत्कंठित है अतः वह क्रांति का आह्वान करता हुआ शोषक वर्ग को चुनौती देता है। संकलन की कविताओं में उच्चकोटि की लयात्मकता और शिल्पविधान है।

श्री घनश्याम 'शलभ' रूप और प्रणय की मधुर गीतकार तो है ही लेकिन साथ ही वे मानवतावादी कवि भी है और सामाजिकता उनके काव्य का परिवेश है। वे प्रणय गीतों के सक्षम शिल्पी होने के साथ-साथ शोषित वर्ग के सौन्दर्यवादी पक्षधर भी हैं। 'प्राण की आग', 'ज्योति विहग', 'बसन्त की धूप', 'मत मुझे पुकारो', 'शेष प्रश्न' आदि कविताओं में सामाजिक चैतन्य का स्वर है जिसे कवि ने अपनी सौंदर्यचेतना से समन्वित किया है। 'धरती का सरगम', 'अधरे के जुगनू' आदि में संकलित कवितायें प्रगतिवादी धारा का प्रतिनिधित्व करती है। अतः लोकधर्मी चेतना के गायक कवि हैं और अपनी प्रारम्भिक रचनाओं में वे मार्क्स से विशेष रूप से प्रभावित रहे हैं।

बीकानेर निवासी श्री गंगाराम 'पथिक' आक्रोशी पीढ़ी के दमदार कवि हैं। 'धुंआ उठ रहा है' उनका प्रकाशित काव्य-संकलन है। इन कविताओं में कवि ने आशा, निराशा, विद्रोह, कुंठा आदि को जो अभिव्यक्ति दी है वह पूरे मकुठित भाव से दी है। उन्मुक्तता पथिक की सबसे बड़ी विशेषता है। इस संकलन की कुछ कवितायें पारम्परिक प्रणय-निवेदन और आशा-निराशा की अभिव्यक्ति हैं लेकिन बाद की कविताओं में उनका स्वर एकदम बदला जा [illegible] दम्य आशा और विश्वास का स्वर बुलन्द करने लगते है —

1. है अंधेरा पर उजाले की डगर पर हूं
   मैं सृजन के सांस हूं, संघर्ष का स्वर हूं
2. शायद कोई तूफान मचलने वाला है
   युग का, जीवन का, इतिहास बदलने वाला है

जिन कविताओं मे कवि का स्वर चुनौती भरा है वे कवितायें गणाराम के पुन व्यक्तित्व का अभिन्नांश हैं। कवि का जीवन दर्शन इनमे स्पष्ट है—

जब दम घुटता है तब कदम बढ़ाता हूं
गम है मेरा गीत, झूम कर गाता हूं

इस संकलन के अन्तिम चरण की कवितायें दहकते अंगारे हैं। कवि का सारा आक्रोश इनमे व्यक्त हुआ है। सामाजिक वैषम्य और शोषण के प्रति तीव्र आक्रोश अपनी पूरी अभिधर्मिता के साथ इनमे व्यक्त हुआ है। रणजीत के साथ लिखी एक कविता का अंश दृष्टव्य है—

यहाँ पुरानी परम्पराओं के पंजो ने घुटने गाड़े
अरमानों पर पहरा देती, जग लगी शमशीरें है
यहाँ दिलों के बीच खड़ी है, दीवारें दीवारों की
देह सम्हल कर चलना भय्या, बस्ती है बटमारों की

'शोर मचाओ' शीर्षक कविता में कवि ने सामाजिक व्यवस्था और उसके सूत्रधारों पर जम कर तिलमिला देने वाला प्रहार किया है—

अपना देश महान् सभ्यता का सिरमौर कहा जाता है
यहाँ बड़े से बड़ा जुल्म केवल चुपचाप सहा जाता है

एक अन्य कविता 'इतिहास बदलने के मौसम में भी देखो, मीरो के वंशज सुरीले मधुर बजाते हैं', में यही आक्रोश और तीव्रता से व्यक्त हुआ है। भाषा का स्पष्ट, दो टूक प्रयोग पथिक की विशिष्टता है।

डॉ. रणजीत राजस्थान के प्रगतिवादी कवियों में अग्रणी हैं। 'ये सपने ये प्रेत', 'इतिहास का दर्द', 'अमनी बर्फ खोलता खून' इनकी प्रकाशित काव्यकृतियाँ हैं। नया काव्य संकलन 'रक्त कमल' मंजरथ है। रणजीत के लिये कविता 'अव-चेतन का क्रन्दन नहीं, अहं का विस्फोट नहीं, अपने या किसी मनोरंजन या रस-प्राप्ति मात्र की चीज नहीं, अपनी सामाजिक अनुपयोगिता के विरुद्ध अपने आपको प्रमाणित करने का प्रयत्न नहीं, एक सजग, सामाजिक कर्म है। अपने आगतान

के संसार को और उसके साथ ही खुद अपने आपको, अपने सपनों के अनुकूल ढालने का प्रयत्न है। 'रणजीत पर मार्क्सवाद का गहरा प्रभाव है और इसीलिये उसके पास मानववादी दृष्टि है। व्यग्य कवि का माध्यम है और लक्ष्य है स्वयं अपनी और परिवेश की क्षुद्रताओं और पाखण्ड पर व्यंग्य का पैना नश्तर लगाना। वह वर्तमान व्यवस्था के प्रति रोष प्रकट करने और जम कर प्रहार करने का कोई अवसर नहीं चूकता। राजीव सक्सेना के शब्दों में, रणजीत की मुखर राजनीतिक कवितायें, समसामयिक हिन्दी कविता में जहाँ सामाजिक और राजनीतिक संवेदनहीनता, नपुंसक अहंवाद और निराशावाद फैशन बन गये हैं, एक विश्वासी स्वर की तरह लगती है। संघर्ष प्रधान स्वर होने के कारण रणजीत के काव्य में वेदना और व्यंग्य, विवशता और विद्रोह के स्वर मुख्यतः उभरे हैं। नश्तर लगाकर झटका देने और चौंकाने की कला में वे सिद्धहस्त हैं। रणजीत की कुछ कविताएं मात्र नारेबाजी या वक्तव्य सी भले प्रतीत होती हों किन्तु वे सोद्देश्य हैं, मर्म का स्पर्श करने वाली हैं। कवि ने उपेक्षितों का पक्षधर बन कर शोषक को आड़े हाथों लिया है। कवि की आस्था एक क्षण को भी खण्डित नहीं होती। उसके लिये—

कामरेड/सिर्फ एक शब्द नहीं/बिजली की लाखों रोशनियों को/एक साथ जला देने वाला/स्विच है।" रणजीत की संवेदना गहरी सामाजिकता से जुड़ी है। "पीले प्रेतों की बस्ती" में रहते रहते उसे डर लगता है कि कहीं 'प्रेत न मैं खुद बन जाऊं"। लेकिन उसे अपने सृजन पर आस्था है अतः वह कहता है—यदि ऐसा हो कभी/कि/इससे पूंजी का अजगर मुझ को भी/प्रेतों के हाथों/मैं भी बिक जाऊं/मानवीय क्षमता के गीत छोड़कर/प्रेतों का ही यशोगान करने लगूं/तो/घृणा से जिंदा बचे इंसानो/मुझ को मेरे वे गीत सुनाना/जो मैंने प्रेतों को इंसान बनाने को लिखे थे।

रणजीत की कुछ कवितायें जैसे—'प्रोमेथ्यूस : इतिहास की राह पर', 'फाउस्ट के कन्फेशन', 'मेरीलिन मनरो का अन्तिम पत्र' तथा 'रेस्त्रां में चायना तूफान' अपनी अभिव्यक्ति की ताजगी, कथन की विशिष्ट भंगिमा एवं तीखे व्यंग्य के लिये उल्लेखनीय है। 'मनरो से पत्र' में कवि ने एक ओर स्त्री जीवन की विवशता को उभारा है वहां अमरीकी सभ्यता और पूंजीवादी विकृतियों से जनित देह के भूखे भेड़ियों पर करारा तमाचा भी मारा है।

रणजीत की विशेषता है उसकी स्पष्टवादिता जिसे न किसी अलंकरण की जरूरत है, न किसी मुहावरे की और न किसी शिल्प तराश की। उनकी कवितायें तिलमिला देती हैं क्योंकि वे अपने समय के सत्य से साक्षात्कार कराती हैं। रणजीत की कविता कहीं 2 प्रचारात्मक भी है लेकिन संवेदना के गहरे धरातलों तक ले जाकर रणजीत सपाटबयानी को भी मार्मिक बनाने की क्षमता रखते हैं।

उत्तरदायित्वों को कंधे पर डाले
प्रश्न-चिन्ह खेतों में बोते हैं लोग।
युग के अपराधों को ढोते हैं लोग।
वनवासी सीता को रोते हैं लोग।

'मयूख' की कविता में चिंतनपूर्ण कथ्य, सामाजिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक मान्यताओं को कलात्मक आवरण से सज्जित किया गया है। लोहिया की सांस्कृतिक चेतना मयूख के काव्य की एक प्रकार से सीमा भी है और उपलब्धि भी।

कवि विजेन्द्र की प्रकाशित काव्य-कृतियाँ हैं 'त्रास', 'जन-शक्ति', 'ये आइ-तियाँ तुम्हारी', 'चैत की लाल टहनी' और 'उठे गूमडे नीले'। विजेन्द्र में परिवेशगत सजगता सबसे अधिक है। कवि अपने अन्तर्मन में निरन्तर संघर्षरत है और उनकी छटपटाहट प्रश्नाकुल मन की व्यथा ही है। वे केवल महफ़ली अंदाज के कवि नहीं हैं। कवि-कर्म को उन्होंने गम्भीरता से लिया है और प्रणय तथा पिसते हुए लघु-मानव के संघर्ष के बीच उनकी काव्य चेतना का विस्तृत आयाम फैला है। उनकी अभिव्यक्ति में मुक्तिबोध सी दुरुहता भी कहीं-कहीं है क्योंकि वे सतही अनुभूतियों के कवि नहीं हैं। उनके पास एक विशिष्ट 'तर्जेबयाँ' है और शब्द को गढने, तराशने की उनकी अपनी कला है। नन्द चतुर्वेदी के शब्दों में वे शब्दों को ईर्षारिचत स्थिति तक ले जाते है। रंगबोध कराने वाले शब्दों का उनकी रचनाओं में इतना प्राचुर्य है कि कभी-कभी उनको रचना विभिन्न रंगों का रेशमी वस्त्र लगने लगती है।

विजेन्द्र का वामपंथी विचारक उनके काव्य पर बराबर हावी रहा है। वे सर्वहारा वर्ग के संघर्ष को वाणी देकर उसकी त्रास-मुक्ति के प्रति आश्वस्त होने की मुद्रा में आ जाते हैं। कथ्य की भंगिमा और तदनुसार चुस्त, कसा भाषा-शिल्प उनकी कविताओं को ताजगी देता है। कवि जहाँ एक ओर अपने इर्द-गिर्द व्याप्त व्याप्त सन्त्रासीय स्थितियों को भोगते हुए कराहने लगता है वहीं उसका आस्थाशील मन, बिखराव या दिशाहीनता से बचते हुए एक ऐसे वसंत को आत्मसात किये रहता है 'जिसके बाद खेत चौखूंट भर जाते हैं, प्रत्येक पौधा कुछ सहज उन्नत हो जाता है।' युगीन 'त्रास' उसके आस्थाशील मन की संघर्षशील प्रवृत्ति को पराजित नहीं कर पाता बल्कि यह प्रवृत्ति उसे वेध कर, मानव जयबोध के लिये प्रेरित करती है। डॉ. हरिचरण शर्मा के शब्दों में, "विजेन्द्र की काव्य चेतना में अवसाद, दाह और त्रास भी है और उनसे उबरने का संकल्प भी। वे सारे अंतर्विरोधों को जीते हुए भी एक गरिमा बोध से जुड़े हुए हैं। उनका लक्ष्य मानव स्थिति का साक्षात्कार

कथ्य मे धरातल पर जितनी दाहक हैं, उनमे जितनी गर्मी और तपिश है, भाषा के धरातल पर वे उतनी ही सर्द और ठण्डी हैं।"

डॉ. जयसिंह 'नीरज' की कवितायें 'नील जल सोई परछाइयां', 'दुखान्त समारोह' तथा 'ढाणी का आदमी' में संकलित हैं। कवि की प्रेषणीयता अभिधा-मूलक न होकर नये स्तर पर रागात्मक संबंधों को स्थापित करने वाली है। सामाजिकता का स्पर्श उनके काव्य को सहज बनाता है। राजकमल चौधरी ने नीरज के 'नये अर्थ बोध' की प्रशंसा की है। 'नील जल...' में कवि ने स्वयं और समकालीनों पर हंसने, बखिया उधेड़ने और उनकी बैसाखियों को छीनने का मंतव्य प्रकट किया है। 'दुखान्त समारोह' की भूमिका में कवि ने लिखा है—मेरे लिये कविता लिखना एक लम्बी लड़ाई लड़ना है ...... उस साजिश को नंगा तथा आक्रोश को अर्थवान बनाकर आज के आदमी को जड़ता के दायरे से निकाल कर मुक्ति के दायरे तक ले जाना है। इस काम के लिये आज शब्दों को गुरिल्ला-युद्ध के लिये दीक्षित करना होगा। संकलन की अधिकांश कवितायें कवि के इसी आक्रोश को व्यक्त करती है। कवि अपने परिवेश के प्रति बहुत सजग है। कवि ने अपने युग के संत्रास को पूरी भयावहता के साथ संवेदना के स्तर पर प्रस्तुत किया है। बीच के अनेक ऐतिहासिक घटना प्रसंगों की सांकेतिक चर्चा के संदर्भ में कवि ने आजादी के बाद की निराशा, घुटन और खोखलेपन को सशक्त अभिव्यक्ति दी है—

1. शहर वेश्या की तरह
   सारे सिक्के भाड़ लेता है
   फुटपाथों पर छोड़ देता है
   आवाराई के लिये।

2. नियति दबोचती है उन्हें कबूतर सी
   कारी बिल्लियाँ। आंखें चमका कर
   धमका देती है
   पेट भर जीने के लिये भीड़ छुपा जाती है

'ढाणी के आदमी' गाँवों में बसे, अनवरत शोषण में पिसते रहने वालों की व्यथा-कथा है। कवि की आंचलिक शब्दावली ने इन कविताओं को माटी की गंध से सराबोर कर दिया है। आम आदमी की जिन्दगी से साक्षात्कार कराने वाली ये कवितायें न केवल भाषा के कृत्रिम आभिजात्य से मुक्त हैं बल्कि शोषण के विरोध में प्रहार करने वाली धारदार तलवार भी है।

कोटा के डॉ. शांति भारद्वाज 'राकेश' की प्रकाशित काव्य कृतियाँ हैं— समय की धार, परीक्षित एवं इतने वर्ष। वे मूलतः प्रगतिशील जीवन मूल्यों के पक्षधर हैं और उनकी अधिकांश कविताओं का स्वर 'काव्यबोध' का है। नई चेतना के प्रगतिशील तत्व 'समय की धार' में संकलित कविताओं में सर्वत्र व्याप्त हैं। स्वयं संघर्षमय जीवन के भोक्ता होने के कारण राकेश ने जीवन की विषमता और विसंगतियों को भोगा है और इसीलिये शोषित-दलित वर्ग के प्रति उनकी सहानुभूति अनेक रूपों में व्यक्त हुई है। अंधेरे, सीलन भरे बदबूदार माहौल में पलने वाले शिशुओं के प्रति उनका मन अनायास ही करुणार्द्र हो उठता है—

> यह चन्दा उन बस्तियों को
> नहीं लांघ पाता
> जहाँ चूल्हे का धुआं देता है फाकाकश की खबर
> जहाँ बदबूदार कीड़े जन्म लेते हैं
> धरा पर रेंगते हैं और
> सड़ गल कर दम तोड़ते हैं।

'समय की धार' की कविताएं काव्यबोध को खण्ड-खण्ड रूप में प्रस्तुत करती हैं लेकिन 'इतने वर्ष' में कवि की परिवेशगत सजगता और समूह चेतना में घुल मिलने की आकांक्षा प्रकारान्तर से प्रगतिवादी दृष्टिकोण को ही रूपायित करती है। 'और जलाओ रोशनी' में कवि की व्यंग्य-चेतना का प्रखर रूप देखिये—

> समाचार पत्रों में उगाओ इतनी फसलें
> कि भूख कोई प्रदर्शन नहीं कर सके
> हौंसलों से पस्त। सदेशों से त्रस्त
> इस नासमझ कौम के लिये
> यह क्या कम है कि वह
> संविधान में अंकित मूल्यों पर
> गर्व कर सके।

कवि राकेश ने सामयिक समस्याओं और परिस्थितियों को पैनी नजर से पकड़ा है। उनकी लघु कविताओं में युगीन संत्रास, नैराश्य और आक्रोश नये बिम्बों-प्रतीकों के माध्यम से मुखर हुआ है। 'परीक्षित' खण्डकाव्य, पौराणिक कथानक पर आधारित होते हुए भी युगीन चेतना और परिवेश की सजगता लिये है। आधुनिक राजनीतिक विद्रूपताओं के प्रति वितृष्णा व्यक्त करते हुए कवि ने सत्तामद में लिप्त जन-

नायकों को भंझोड़ने का प्रयत्न पौराणिक मिथकों के माध्यम से किया है। राकेश के पास भाषा और तराशा हुआ शिल्प है। वैचारिक गरिमा इस कृति को श्रेष्ठ कृतियों में प्रतिष्ठित करती है।

जोधपुर के स्वर्गीय मदन डागा राजस्थान के महत्वपूर्ण प्रगतिशील कवि हैं। उनके प्रकाशित काव्य संकलन हैं—यीशू का अनुवाद, गोपी का गाँव, अजानी सर्वाडों पर (सम्पादित) डॉ डागा की कविताओं का प्रधान स्वर सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक परिस्थितियों के शिकंजे के भीतर प्रतिपल पिस रहे व्यक्ति की विवश-व्यक्ति की यातना और संघर्ष का है। इनकी कविताओं में सामाजिक परिवेश अपनी समस्त जटिल संरचनाओं, विसंगतियों और विद्रूपताओं में व्यक्त हुआ है। स्वातन्त्र्योत्तर भारतीय राजनीति के छल-छद्म और आम आदमी के साथ हो रहे क्रूर मजाक को डॉ मदन डागा ने अत्यन्त पैनी और व्यंग्य मिश्रित भाषा के माध्यम से व्यक्त किया है।

दोस्त मेरे
भारत एक कृषि प्रधान देश नहीं
कुर्सी प्रधान देश है।

समसामयिक राजनीतिक भ्रष्टाचार और मानव विरोधी साजिश के प्रति कवि की दृष्टि कितनी पैनी है—

"गाय मार जूता देना/एक कहावत है/मगर आदमी मार बोनस दान/सरकार की आदत है/यह सरकार/जो/रक्त से सने चिथड़े दिखा कर/हृदय परिवर्तन करना चाहती है/ना वे उसके मासिक मर्म के चिथड़े हैं/तुम नाहक उसे खूनखराबा समझ कर डर रहे हो/प्रायश्चित में आत्महत्या कर रहे हो।"

बीकानेर निवासी हरीश भादानी, इस प्रांत के प्रतिष्ठित काव्य-हस्ताक्षर हैं, जीवन के विविध-अनुभव ने उनके काव्य को जहाँ एक और यथार्थ की सम्पन्नता दी है, वहीं स्वर में रूमानियत और तल्खी का समावेश भी किया है। जन्म के पहले ही महीने, स्वर-साधक पिता का सन्यास, दूसरे माह माँ की विदा और फिर इस 'अपशकुनिये टाबर' की उपेक्षित जीवन-यात्रा का सिलसिला। इस उपेक्षा से उपजा आवेश उसे होटल की बैरागिरी, दुकान की झाड़ूदारी और गायवादी, समाजवादी और अन्ततोगत्वा मार्क्सवादी कम्युनिस्टों तक ले गया, 'वातायन' और 'कलम' जैसी भारतीय ख्याति की पत्रिकाओं का हरीश ने सम्पादन किया। रूमानीपन उसे विरासत में मिला और जन आन्दोलन, जेल यात्रा आदि के अनुभव उसे अजाने ही विचारों की सम्पन्नता दे गये।

हरीश की प्रकाशित काव्य कृतियाँ हैं—'मधुरे [illegible]', [illegible] उजली नजर की सुई, सुलगते पिंड, [illegible] खुले अलाव पकाई घाटी, [illegible] [illegible]

हरीश मूलतः [illegible] हैं और [illegible] के लिए जो [illegible] के [illegible] के [illegible] हुए हैं। [illegible] 'मधुरे [illegible]' [illegible] [illegible] किया है।' 'सरद की रातें' में कवि का स्वर [illegible] [illegible] सामाजिक उपादेयता की दृष्टि कवि की इस कृति में भी है। [illegible] के युग [illegible] का स्वर [illegible] है लेकिन अधिकांश कविताओं में शोषण के प्रति [illegible] के विरोध के प्रति तीव्र आस्था की अभिव्यक्ति है। कहीं तक [illegible] तक आ पहुंचा है लेकिन प्रारम्भिक कृति की ही भांति [illegible] और शिल्प का निखार उनमें नहीं है।

'उजली नजर की सुई' में भी कवि की दृष्टि मूलतः रोमेंटिक ही है लेकिन अभिव्यक्ति की भंगिमा पूर्व कृतियों से भिन्न प्रकार की है। यहाँ कवि ने 'नवगीत' और 'नई कविता' के क्षेत्र में प्रवेश किया है। पहली कृति 'मधुरे [illegible]' में कवि ने 'नई कविता' का विरोध किया है लेकिन परिवेश के दबाव ने उसे संवेदना के भिन्न धरातल पर लाकर खड़ा कर दिया है। 'सुलगते पिण्ड', कवि की काव्य-यात्रा का अगला पड़ाव है। कथ्य और शिल्प दोनों में नयापन है। अनुभूतियों ने सहज शिल्प की अभिव्यक्ति ली है।' अधिकांश कविताओं में जीवराग की चाह और पराजय की धुन्ध को हटाने की तीव्र ललक है। प्रतीकों और बिम्बों में सहजता है, जटिलता नहीं। कवि ने बड़े स्वस्थ मन से जीवन के प्रति आस्था व्यक्त की है।

'नष्टो मोह' हरीश की लम्बी कविता है जिसमें मोह भंग से उपजा आवेश तरसी है। कृति, कवि को संघर्षशील लोगों की पंक्ति में ला खड़ा करती है। 'खुले अलाव और पकाई घाटी' में हरीश का प्रौढ़ चिन्तन और कलात्मकता का निखार व्यक्त हुआ है। इस कृति में जहाँ एक ओर कवि की व्यवस्था के प्रति आक्रोश और उस पर तीव्र प्रहार की प्रवृत्ति मुखर है वहाँ साथ ही उसकी सामाजिक प्रतिबद्धता पूर्व की अपेक्षा कहीं अधिक जीवंतता के साथ प्रकट हुई है, कवि की साम्यवादी-दल सम्बद्धता और तदनुरूप संघर्षशील मानव की शोषण मुक्त समाज की आकांक्षा की कलात्मक परिणति इस कृति की विशेषता को रेखांकित करती है।

जयपुर निवासी मनोहर प्रभाकर की प्रतिभा बहुमुखी है। प्रारम्भ से ही पत्रकारिता को व्यवसाय के रूप में ग्रहण कर और उसी को आजीविका का माध्यम बना लेने के कारण, प्रभाकर ने बहुत कुछ रचा और गद्य-पद्य दोनों ही क्षेत्रों में सृजन-क्षमता का परिचय दिया। प्रभाकर राजस्थान के उन विरल साहित्यकारों में से हैं जिन्होंने हिन्दी और अंग्रेजी दोनों में समान अधिकार के साथ लिखा है। उनकी अब तक लगभग 40 कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। 'विदा की साँझ', 'गन्धारी', 'अर्चना', 'महुए महक गये' तथा 'कुछ और' आदि इनकी प्रकाशित काव्यकृतियों के अतिरिक्त 'लहरों की गोद में', 'रागरंग' जैसमा और अन्य संगीत रूपक, नामक राजस्थान की रस गाथाएँ 'कथा सकलन' आदि के अतिरिक्त प्रभाकर जी ने भर्तृहरि कृत 'नीति शतक', 'शृंगार-शतक', 'वैराग्य शतक' तथा कालिदासकृत 'मेघदूत' के राजस्थानी पद्यानुवाद तथा हुमायूँ कबीर द्वारा सम्पादित टैगोर कृत 'युनिवर्सलमैन' तथा व्हाइट विटमैन कृत 'लीव्स आफ ग्रास' का अनुवाद किया है। तीन वर्ष पूर्व उन्हें भारतीय समाज विज्ञान अनुसन्धान परिषद की सीनियर फैलोशिप से सम्मानित किया जा चुका है। 'राजस्थानी साहित्य एवं संस्कृति' तथा 'इण्डियन स्टडीज अब्रोड', इनकी सम्पादित पुस्तकें हैं। भारतीय पत्रकारिता का उपेक्षित अध्याय इनका शोध-ग्रन्थ है जिसमें राज्य की हिन्दी पत्रकारिता का विगत सौ वर्ष का प्रामाणिक इतिवृत्त पहली बार उपलब्धियों के साथ रेखांकित किया गया है। चारणों की मध्ययुगीन राजस्थानी काव्य को देन का तथा स्वतन्त्रता संग्राम को राजस्थान के कवियों के योगदान विषयक इनके अनुसन्धानपूर्ण कार्य ऐतिहासिक दस्तावेज हैं, जो इस प्रान्त की गौरवमयी साहित्य-परम्परा के अनछुए पहलुओं को उजागर करते हैं। विदेशी विद्वानों ने इन शोधपूर्ण कार्यों की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है।

सामाजिक प्रतिबद्धता एवं परिवेशगत सजगता, प्रभाकर के कृतिकार को कलाकार के दायित्व-बोध से जोड़ती है। उनके कृतिकार का मूल स्वर रोमान्टिक है जिसमें प्रणय का उल्लास, विरह का अवसाद, सृजन की कामना, संघर्षशील प्रवृत्ति तथा आशा-निराशा के अनेक स्वर उभरे हैं लेकिन एक बात जो हर रचना में है वह है उनका युगबोध, प्रभाकर की मान्यता रही है कि रचनाकार चाहे अपने ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य के सन्दर्भ में सीधा कुछ न कहता हो लेकिन वह उससे अप्रभावित रह नहीं रहता-रचनाशील कृतिकार न केवल अपने समय के यथार्थ को प्रतिबिम्बित करता है बल्कि उसे आकार भी देता है क्योंकि उसका कार्य केवल दोहराना नहीं अपितु पुनर्रचना करना होता है। अपने समय की विसंगतियों को कवि ने खुली आँख से देखा और परखा है। सामाजिक वैषम्य का दंश उन्हें टीसता है और समय की त्रासदी को वे पूरी प्रामाणिकता से उभारते हैं। गीत, गजल, नव-गीत,

नई कविता–सभी माध्यमों से कवि ने जनवादी तेवर के साथ सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक विसंगतियों पर चोट की है।

प्रभाकर मूलतः गीतकार है किन्तु यह उनकी सीमा नहीं है। हिन्दी ग्रन्थों के अनेक ग्रन्थों के प्रणेता, विविध विधाओं में समान गति से रचना-क्षमता का परिचय देने वाले इस अध्ययनशील, अध्यवसायी कवि-पत्रकार-चिंतक ने नये भाव बोध से सम्बन्धित रचनायें लिखी है, जिसमें 'अकाल', 'बाढ़ और स्वीमिंग पूल', 'वे अजान शिल्पी' आदि उल्लेखनीय हैं जिनमें व्यंग्य अपनी प्रखरता से मुखर हुआ है। वे इस प्रान्त की जनवादी परम्परा के समर्थ गीतकार है।

जोधपुर के प्रगतिशील विचारक और प्रबुद्ध न्यायविद् मरुधर मृदुल प्रांत के सुविदित कवि एवं विचारक हैं। अनेक सामाजिक एवं राजनीतिक आन्दोलनों से समय-समय पर जुड़ते रहने के कारण इनका कवि मन प्रतिबद्धता के पक्षधर के रूप में अपनी कविताओं में रूपायित हुआ है। विद्यार्थी जीवन से ही मार्क्सवाद की ओर इनका रुझान आयु के विकास के साथ-साथ विकसित और परिपक्व होता गया। प्रारम्भ की सपाटबयानी वय के साथ-साथ अधिक कलात्मक और कथ्य अधिक प्रौढ़ बोझिल होता गया। राजस्थान लेखक संघ के अध्यक्ष के रूप में या फिर राजस्थान प्रगतिशील लेखक संघ के अध्यक्ष मण्डल के सदस्य के रूप में या प्रगतिशील लेखक आन्दोलन के साथ जुड़ाव के रूप में मरुधर सोच और प्रतिबद्धता के पक्षधर के रूप में स्थापित हस्ताक्षरों में अपनी पहचान बनाते गये। उनके कवि मन का छोर उनकी व्यवहारिक जिन्दगी का ही एक हिस्सा है, इसी से मरुधर ने विधि-द्वारा कम ही सही पर सामाजिक न्याय दिलाये जाने की उत्सुकता से कुछ नये आयामों का स्पर्श करने का वातावरण बनाया है। वामपंथी रुझान के कारण ही वे कई बार सोवियत रूस की ओर बुल्गेरिया और चैकोस्लोवाकिया की यात्राएं कर चुके हैं। उन्हीं के शब्दों में 'सूनी आँख का सपना कहाँ साकार हुआ।' 'शब्दों का घूंट', इनकी प्रकाशित काव्यकृति है। 'सूनी आँख का सपना', शीघ्र प्रकाश्य है।

मरुधर विचारधारा से वामपंथी हैं, प्रगतिशील आन्दोलन से जुड़े हैं पर उनकी भावुकता समाज निरपेक्ष नहीं है। वे उन प्रगतिशीलों में नहीं हैं जिन्होंने प्रगतिशीलता को मुखौटे की तरह ओढ़ रखा है और कुछ चुनी शब्दावली के प्रयोग और भीड़ में नारे लगाने को ही प्रगतिशीलता की इतिश्री मानते हैं–जिन्हें मार्क्स का ज्ञान कम, उसे भुनाने की कला अधिक आती है। मरुधर के नव भावबोध वाली छोटी कविताओं में उनका वामपंथी चिंतन मुखर हुआ है। 'सूनी आँख का सपना' की अधिकांश रचनाएं, कवि की प्रौढ़ विचार शक्ति और परिपक्व चिंतन से परिचित कराती है। परिवेशगत सजगता का परिचय 'डॉ. ओमेगा व ... पर', 'मुट्ठियों में, मार्च १४ पुण में, ...' आदि कविताओं में मिलता है। जिनमें

शोषण, युद्ध, सीमा-अतिक्रमण और उपनिवेशवाद के विरुद्ध बड़ी नम्बी के साथ तेवर बदले गये है। मनुष्य में कवि की अटूट आस्था है और उसकी सृजन क्षमता तथा उज्जवल भविष्य के प्रति उसका मन पूर्णतः आश्वस्त है। 'अभियान', 'मुक्ति का स्वर्णिम सवेरा', मनुष्य की परम्परा' आदि रचनाओं मे मनुष्य की अपराजेय क्षमताओं का जयघोष है। कवि का प्रश्नाकुल मन सामाजिक वैषम्य के प्रति कभी आक्रोशपूर्ण मुद्रायें बनाता है, कभी हथौड़ा, कुदाली को उठाकर शोषक शोषित के अन्तर को समाप्त करने को सकल्पित हो उठता है।

मरुधर के पास अपनी दृष्टि है और भाषा का विषयानुकूल प्रयोग और नये कथ्य के अनुरूप मुहावरे की परख उन्हें है। उनकी पुस्तक की भूमिका मे विजयदान देथा ने कहा है — शब्दो के बहाने व्यक्त होने वाला काव्य-कला के शब्द तो आवरण मात्र है। "शब्दों के उस झीने घूघट के भीतर ही सत्य व सौन्दर्य छिपा रहता है।" मरुधर ने इसी घूघट को अनावृत कर सौन्दर्य से साक्षात्कार करने का प्रयत्न किया है।

"मैं प्रारम्भ से ही प्रगतिशील विचारो का रहा हूं इस कारण साहित्य के बारे मे सोच विचार करते समय सामाजिक सदर्भ मेरे सामने हमेशा रहे है, साहित्य रचना मेरे लिए समाज निरपेक्ष कोई दिव्य या अलौकिक कार्य कभी नहीं रहा। साहित्य-सृजन एक सामाजिक कार्य है और उसकी उपलब्धि, महत्त्व या सार्थकता पर सामाजिक सदर्भ मे ही बात हो सकती है।"

अलवर के जुगमन्दिर तायल, नई कविता के प्रतिनिधि हस्ताक्षरो मे से हैं। एक स्थान पर उन्होंने लिखा है—वामपथी विचारधारा से प्रेरित तायल के पांच काव्य-संकलन धूप भरी सुबह, रोशनी का रथ, सूरज सब देखता है तथा जंगल से गुजरते हुए, दर्पण के बिम्ब प्रकाशित हो चुके हैं। वामपथी रुझान के बावजूद तायल की काव्य-चेतना की पृष्ठभूमि मे प्रकृति के सौन्दर्य के प्रति आकर्षण रहा है। 'रोशनी का रथ' मे कवि की प्रगतिवादी रचनायें है जो उनके प्रारम्भिक कवि रूप से परिचित कराती है, इनमें श्रम की महिमा का यशोगान है तथा आज की उदासी से कल की आशा की तलाश की छटपटाहट है। 'धूप भरी सुबह' मे कवि का मुख्य कथ्य प्रकृति के इर्द-गिर्द केन्द्रित है। नये प्रतीक विधान के माध्यम से कवि ने प्रकृति के इन्द्रधनुषी रूपों को नये-नये संदर्भों मे स्थापित किया है। इस कृति के अन्तिम दो खण्डो मे—नव सदर्भो मे प्रतिश्रुत, रक्त-बोध और हसी के टूटने आवर्त में अन्य सदर्भों की भी कवितायें हैं पर उनमें कथ्य की सपाट बयानी प्रधान है 'सूरज सब देखता है' की कवितायें अलग-अलग होते हुए भी एक लम्बी कविता की रचना करती है—सौन्दर्य से भावात्मक, बिम्बात्मक साक्षात्कार और इसके माध्यम से सौन्दर्य से तादात्म्य तक की यात्रा की ये कवितायें है। इसकी भी

कवि-चेतना यातनापूर्ण मानवीय स्थिति से साक्षात्कार और उसके निर्णय विश्लेषण की दृष्टि अर्जित कर लेती है—

वे तुम्हें/गन्दे नाले में डाल/सोने का पिंजरा बेचकर/जश्न मनायेंगे/तुम केवल/पीते रहोगे/मौन

'रोशनी की शहतीर' और 'ऋतुओं की भाषा' में सुधाजी की जनवादी सौन्दर्य दृष्टि विकसित हुई है जिसने परिवेशगत दायित्वबोध और सामाजिक सरोकारों तक अपनी काव्य-चेतना का विस्तार किया है। माधव हाड़ा के शब्दों में—'रोशनी की शहतीर' में अवश्य वैचारिक सरलीकरणों, कविता के प्रचलित रूढ़-रूपों, मुद्राओं तथा शब्द स्फीति प्रधान विद्रोह का मोहातिरेक है जिससे चीजों ने अपना ठोस सन्दर्भ खो दिया है किन्तु 'ऋतुओं की भाषा' तक आते-आते कवयित्री इस खतरे से सचेत हो गई है। उसने जान लिया है कि—कविता किन चीजों के भीतर निवास करती है और उनमें अन्तर्निहित कविता में शरीक होना कवि का लगभग पहला धर्म है। वह कहती है—

मेरी कविता के शब्द/उस गहराई तक उतरते हैं/जहाँ एक कामगार मजदूर/अपनी जान हथेली पर रख/नीचे बहुत नीचे/खदानों में उतर/रोटी खोजता है—

'चेतना के फूल' अपेक्षाकृत कमजोर रचना है क्योंकि इसके अन्दाज काफी नये होने के बावजूद 'छायावादी भावाकुल तन्मयता और प्रणय-प्रकृति की एकायामी विषय-वस्तु से पूर्ण है। इसका महत्व इस दृष्टि से है कि इससे सुधा के काव्य-विकास और रचना-प्रक्रिया को समझने में सहायता मिलती है।

कांकरोली निवासी कमर मेवाड़ी राजस्थान के बहुचर्चित संघर्षशील कवि एवं कथाकार हैं। डा. मनोहर प्रभाकर के शब्दों में 'मेवाड़ के छोटे से कस्बे कांकरोली में बैठ कर कमर ने जो संघर्षपूर्ण सृजन-यात्रा तय की है वह उसे समृद्धि तो नहीं दे पाई पर सम्मान को कोस-मीनारों तक उसे अवश्य पहुँचाया है। कमर मुँह में चाँदी का चम्मच लिये पैदा नहीं हुए और न उसे सरकार में ऊँचा ओहदा मिला किन्तु इसके बावजूद उसके पास अपने व्यक्तित्व की सादगी और सार्थक कृतित्व की ऐसी पूँजी है जो उसे एक निजी वैशिष्ट्य प्रदान करती है।' कमर की प्रकाशित कृतियाँ हैं—चाँद के दाग, आखिर कब तक, बहस अभी जारी है, फैसला होने तक (सभी काव्य), वह एक (उपन्यास), लाशों का जंगल, रोशनी की तलाश (कथा) भारत ख्याति की त्रैमासिकी 'सम्बोधन' के वे संस्थापक संपादक हैं।

कमर का काव्यबोध प्रारम्भ से ही प्रगतिशीलता की स्वस्थ्य भावभूमि से प्रेरित रहा है अतः उनकी कविताएँ किन्हीं अवांछित व्यामोहों और अन्तर्विरोधों से

आक्रान्ता नहीं है। 'चाँद के दाग' की कवितायें आज के मानव की यातनापूर्ण स्थिति से निर्मम साक्षात्कार कराती हैं। इन कविताओं में एक उत्पीड़ित वर्ग जिसके साथ हो रहे अमानवीय अत्याचार को कवि ने विभिन्न कोणों से उभारा है दूसरा वर्ग उत्पीड़क का है जिसके प्रति कहीं तीव्र घृणा व्यंजित हुई है तो कहीं प्रतिघर्मा आक्रोश और व्यंग्य की तीक्ष्ण धार से उसे काटा गया है। एक पूरी सदी के साथ हो रही साजिश के प्रति कवि की नाराजगी अधिकांश कविताओं में मुखर हुई है। यह नाराजगी मात्र व्यथा स्थितिवाद या निराशामूलक भावों को जन्म देकर ही समाप्त नहीं हो जाती बल्कि एक सामूहिक आक्रोश और अस्वीकार को जन्म देती है।

कमर की भाषा और काव्योपकरण विशिष्ट किस्म के हैं। उनका बिम्ब विधान कभी-कभी फतासी का आभास देता है किन्तु सघन तनाव का निर्वाह बहुत दूर तक नहीं कर पाता। 'बहुत अभी जागी है' की रचनाओं में व्यवस्था के विरुद्ध आक्रोश अधिक तल्खी लिये है। परिवेशगत सजगता, सामाजिक वैषम्य के यथार्थ परक चित्र तो उभारती है किन्तु समाधान नहीं देती। वैसे कुछ कविताओं में आस्था का स्वर मुखर है लेकिन अधिकांश में पराजय, टूटन, सन्त्रास का गहरा अहसास ही अधिक है। कमर की कवितायें यातनापूर्ण स्थितियों से परिचित कराती है, व्यवस्था के कुचक्र को बेनकाब करती है और कवि के दायित्वबोध को उजागर करती हैं। बाद की कविताओं में कमर अधिक विश्वास और मानवीय संवेदना के धरातल पर उठकर अपनी बात कहते हैं। कविता को उन्होंने हथियार की तरह प्रयोग में लिया है जो अपनी धार से काटती भी है, तिलमिलाती भी। निरर्थक शिल्पगत व्यामोह कमर में नहीं है किन्तु कहीं-कहीं अभिधा इतनी अधिक है कि कविता वक्तव्यबाजी, सपाटबयानी या महज नारेबाजी लगने लगती है।

अन्य कवि—

अलवर के भागीरथ भार्गव अपनी प्रतिबद्ध जीवन-दृष्टि और प्रगतिशील काव्य-संवेदना के कारण राजस्थान के प्रगतिवादी कवियों में उल्लेखनीय स्थान रखते हैं। 'हथेलियों में ब्रह्माण्ड' तथा 'राजा की सवारी' इनकी प्रकाशित काव्य-कृतियाँ हैं। व्यापक सामाजिक विकृतियों, राजनीतिक विसंगतियों और आर्थिक असमानताओं के समाहार के लिये कवि के पास प्रश्नाकुल छटपटाहट है और वह मानवीय अस्तित्व की यातना को संवेदन के स्तर पर गहराई से अनुभव करता है। जोधपुर की डॉ. सावित्री डागा की काव्य-यात्रा का प्रारम्भ रूमानी-बोध से हुआ लेकिन धीरे-धीरे वे समकालीन सदर्भों से युक्त, परिवेश के प्रति संवेदनशील रचनाकार के रूप में अपनी पहचान स्थापित करती गई। अमिट निशानी, मुक्तावली,

दर्भों से कटे हुए तथा 'क्या फर्क पड़ता है', उनकी प्रकाशित काव्य-कृतियाँ हैं। उदयपुर के भगवतीलाल व्यास का काव्य-बोध प्रारम्भ से ही समकालीन संदर्भों से सम्पृक्त रहा है। 'शताब्दी निरन्तर है' तथा 'फुटपाथ पर चिड़िया नाचती है', उनके प्रकाशित काव्य-संकलन हैं। प्रश्नाहत और निरन्तर शताब्दी अपनी तमाम विसंगतियों, विद्रूपताओं, हताशाओं और दुर्बलताओं के साथ 'शताब्दी निरन्तर है' में चित्रित है। 'फुटपाथ - ' की कवितायें समय की दुरभिसंधियों को प्रकट करती हैं।

जयपुर के वेद व्यास के नवगीत प्रगतिशील रचना-दृष्टि और जनवादी भावभूमि के कारण केवल संवेगात्मक अनुभूति ही नहीं देते अपितु भावुकता और बौद्धिकता के सामंजस्य से साक्षात्कार कराते हैं। वे सभ्यता-संस्कृति में पनपे पाखंड और परिवर्तन की सम्भावनाओं को रेखांकित करते हैं। अस्तित्व के लिये संघर्षरत व्यक्ति में नई चेतना, आस्था, संकल्प के संचार का भाव उनके काव्यबोध को रुग्ण विघटनशील काव्य-प्रवृत्तियों से बचाता है।

झालावाड़ के रघुराजसिंह हाड़ा पौरुषेय स्वर के ओजस्वी कवि हैं। उनके गीत प्रगतिधर्मा हैं। 'बोलते पत्थर' उनकी प्रगतिशील रचनाओं का संकलन है। उनकी प्रणयानुभूतियाँ भी गहरी सामाजिकता और दायित्व-बोध से जुड़ी हैं। वस्तुतः वे 'युग-मुखर करण्ठ लेके राष्ट्र की मुक्ति और प्रगति के ओजस्वी वैतालिक हैं।' 'विप्लव-गायन' के कवि स्व मनुज देपावत प्रगतिशील चेतना के कवि हैं। अपनी रचनाओं में उन्होंने शोषण-वर्ग के सभी प्रतिनिधियों को चुनौती भरे स्वर में ललकारा है और शोषण-विहीन समाज रचना को स्वर दिया है। 'कवि मनुज, शोषण रहित समाज की परिकल्पना में ही शोषण की भिन्न-भिन्न स्थितियों पर बार-बार चोट करता है।' सिरोही के डॉ रमाकांत शर्मा की कृति 'मौसम का इन्तजार' की कवितायें मनुष्य की महिमा का यशोगान करने वाली तथा शोषण विहीन समाज-रचना के स्वप्नदर्शी कवि की कवितायें हैं। रमाकान्त मार्क्सवाद से प्रभावित हैं और उसी की मान्यताओं का कलात्मक निरूपण उन्होंने अपने काव्य में किया है। 'छलके आंसू, बिखरे मोती' और 'कुहरे में धूप खिली' इनके अन्य चर्चित काव्य-संकलन हैं। नंद भारद्वाज राजस्थान के सुविदित जनवादी कवि हैं। 'झील पर हावी रात', उनका प्रकाशित काव्य-संकलन है जिसमें अंधेरे के दण्ड विधान के विरुद्ध सुलगती मानसिकता को व्यक्त करने वाली कवितायें हैं। वे सर्वहारा वर्ग के समर्थ पक्षधर हैं और सभी विसंगतियों के लिये उत्तरदायी तत्त्वों पर जम कर चोट करते हैं। अपने समय के अनेक प्रश्नों से जूझते और उत्पीड़ित के स्वप्न साकार करने का हौसला उनकी कविता में है।

पिछले दिनों राजस्थान साहित्य अकादमी के आर्थिक सहयोग से राजस्थान के कतिपय युवा कवियों के काव्य-संकलन प्रकाशित हुए हैं। इनमें उमेश 'अपराधी'

या 'तारिख नहीं बदलेगी', नमोनाथ अवस्थी की 'हथेलियों पर उगा बंजारा' जनकराज पारीक की 'अब आगे सुनो', रेवती रमण शर्मा की 'कदाचित नहीं हूँ मैं', हितेश व्यास कृत 'समान धर्म', और गोविंद माथुर की 'शेष होते हुए' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन सभी का तेवर प्रगतिवादी कविता का है और सभी के मन में शोषण, आर्थिक विसंगतियों, सत्ता-प्रतिष्ठानों और उन सबके प्रति जो समाज में गैर बराबरी के तरफदार हैं, अपने-अपने ढंग से आक्रामक तेवर हैं। राजस्थान की युवा-पीढ़ी के प्रतिनिधि-हस्ताक्षर है। इनकी कविता यह समझने का अवसर देती है कि इस समय राजस्थान के नये काव्य-हस्ताक्षर का क्या सोच है और अपने परिवेश व दायित्व-बोध से वह कितनी गहराई तक जुड़ा है। प्रसन्नता यह देख कर होती है कि हमारी नई पीढ़ी काव्य-कर्म को महज महफिली अन्दाज में नहीं देखती और उसके लिये कविता सभी तरह के अंधेरों पर प्रकाश-विजय की कामना के लिये जूझते रहने की अनवरत साधना है।

6

प्रयोगवाद, नये परिवेश व नव-बोध की कवितायें

पश्चिम की काव्यधारा के प्रभाव से सम्पूर्ण भाषाओं की भांति राजस्थान की हिन्दी कविता के प्रवाह में भी नया मोड़ आया है। एजरा पाउण्ड और टी. एस. ईलियट के काव्य-रूप को 'अज्ञेय' आदि कतिपय अन्वेषी कवियों के माध्यम से प्राप्त कर राजस्थान के प्रतिभावान कवि-कर्मियों ने इस दिशा में भी सृजनात्मक क्षमता का परिचय दिया है। अभिधापूर्ण प्रेषणीयता के विरोध में नये स्तर पर रागात्मक सम्बन्धों की स्थापना करने की दृष्टि से ही प्रयोगवादी कविता का जन्म हुआ। एक ओर छायावाद की नपी-तुली शब्दावली ने इतना आडम्बर फैला दिया था कि 'बिम्बों के गतिशील तत्व' नष्ट हो गये थे, दूसरी ओर प्रगतिवाद ने सामाजिकता की ओट में भाव-स्तर को अभिधा की परिधि तक सीमित कर दिया था। नये विद्रोही अन्वेषी कवियों ने नव-बोध की अभिव्यक्ति के लिये पुरानी परम्परा के विरुद्ध बगावत की और अनुभूति के एक-एक क्षण को, हर स्तर पर, नये सदर्भों से जोड़ कर अभिव्यक्ति के नये आयामों की खोज की। काव्य में अब तक भावात्मक सत्ता का ही बोलवाला था लेकिन इन नये कवियों ने बौद्धिकता को भी काव्य का अंग बना लिया। रस की स्थिति में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए और 'बुद्धि रस' या बौद्धिक रस' की कल्पना विस्तार पाने लगी। अनुभूति को भावना-जगत से पृथक कर बौद्धिकता से सम्पृक्त माना जाने लगा और क्योंकि विषयगत परिवर्तन की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई अत शिल्पगत नये प्रयोगों के निमित्त मार्ग स्वयं ही प्रशस्त हो गया। प्रयोगवाद में शिल्प को, शिल्पी के व्यक्तित्व के अनिवार्य अंग के रूप में ग्रहण किया जाने लगा और इस प्रकार 'फार्म' और 'कान्टेन्ट' दोनों ही दृष्टियों से आमूल परिवर्तन हुए। अनुभूति की दृष्टि से अधिक ईमानदारी की बात कही जाने लगी और प्रेषणीयता की दृष्टि से 'ज्ञान के विशेषीकरण' पर बल दिया जाने लगा। प्रयोगशीलता के सम्बन्ध में अज्ञेय का कथन है—"जो व्यक्ति का अनुभूत है, उसे

चतुर्वेदी, विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, मणि मधुकर, ऋतुराज, रामगोपाल 'दिनेश', नन्दकिशोर आचार्य, जुगमन्दिर तायल, जयसिंह 'नीरज', रमेश 'मोन', रामदेव आचार्य, शान्ति भारद्वाज, हरीश भादानी, विजेन्द्र, भागीरथ भार्गव, वीर सक्सेना, भारतरत्न भार्गव, प्रकाश आतुर, मंगल सक्सेना, प्रकाश जैन, हेमन्त शेष, कृष्ण बिहारी सहल, सुधा गुप्ता, रणजीत, कैलाश जोशी, पारसचन्द 'साथी' आदि कवि, इस प्रान्त के नव-बोध एवं प्रयोगधर्मी कविता के प्रतिनिधि हस्ताक्षर है। इनमे से अनेक कवि पूर्ववर्ती काव्य-परम्परा के निर्माण मे भी महत्वपूर्ण योग देते रहे है और समय के साथ जिनकी प्रतिभा ने नये सीमान्तो तक फैल कर अपने युग-बोध की सजगता का परिचय दिया है।

राजस्थान मे, काव्य मे सक्षम शिल्पगत प्रयोगो, सांकेतिक भाषा शैली और भोगे-क्षण को तीव्रतम अभिव्यक्ति देने मे समर्थ, व्यापक अर्थ-बोध वाली कविताओ की रचना का प्रारम्भ कन्हैयालाल सहल और नंद चतुर्वेदी से होता है। छायावादी और प्रगतिवादी स्वरो को छोड़ते हुए इन कवियो ने काव्य-क्षितिज के नये आयामों की ओर ध्यान दिया और नई प्रवृत्ति की शुरुआत मे रुचि ली। राजस्थान के कवि ने अभिव्यक्ति के निमित्त जिन प्रतीकों और बिम्बों का चयन किया वे परम्परागत नहीं है। नये प्रतीको ने अर्थ-बोध को विस्तार दिया और अनुभूतियो को नये स्तर पर लाकर प्रतिष्ठित कर दिया। अधिकांश प्रतीको का चयन, जीवन के यथार्थ से ही किया गया है। उनमे प्रेषणीयता की दुरूहता भी नहीं है। विगत एक दशक मे राजस्थान में नई कविता का स्वर बड़ी तेजी से उभरा है। अब यह मानी हुई बात है कि राजस्थान मे नई कविता के स्वर में गहराई आने लगी है और कई कवि अपनी जागरूक चेतना से समय और परिवेश को जीते हुए सही कलम का इस्तेमाल कर रहे हैं। इनकी संवेदनायें मूर्छी हुई नहीं, इनका परिवेश आरोपित नहीं और इनका शिल्प अनगढ़ नहीं।[1] सध्या और भोर के कुछ बिम्ब देखिये—

1. शाम का रोगी चहरा
   गम्भीर एकान्त मे लुढ़का हुआ
   हसती हुई नर्म–चादनी उड़ा जाती है।[2]

2. उड़े दल पांखी
   अचानक अक्षरों से भर गया आकाश
   हाशिये सी छूटती जाती अकेली शाम

1. पुनश्च हरिचरण शर्मा, पृ. 349
2. मैं आगिरस, ऋतुराज, पृ. 34

7. सूरज इस ओर से उस ओर तक
दिन के साथ-साथ
घसीटता रहा पाँव
अन्तत:
दोनों एक साथ मर गये ।[1]

8. चाँद
आकाशवधू के गले में
चमकता
पेंडेन्ट
धूप
सुनहरी तितली के
टूटे पंख
चिपक गये हैं खुली जगहों पर[2]

वादी कवियों में घोर व्यक्तिवाद एवं अहं के प्रदर्शन की प्रवृत्ति पाई जाती है। की असमर्थता और असफलता को कवि अपने 'अहं' के माध्यम से तुष्टि प्रदान है। अहं की अभिव्यक्ति, प्रयोगवाद की धुरी है जिस पर अनुभूतियों-अभि-यों का चक्र घूमता है। मन की व्यथा, तृषा, लोभ, मद उसके अहं को चुनौती देते हैं अवचेतना की तृषा-तृप्ति के लिये उसके मन का अहं उसे बौराने लगता है —

मैं बोझिल हूँ
अहं मुझे बौराता है
अपनी बाहों पर उछालता है।[3]

अहं की यह भावना, कवि को आत्म-प्रचार के लिये प्रेरित करती है। वह अपनी ही मृत्यु की कल्पना कर, मानसिक आनन्द की अनुभूति प्राप्त कर अपने अहं को तृप्त करता है। स्वयं को दुःखित या स्वार्थमय सिद्ध करने के पीछे उसका मूल उद्देश्य यही है कि वह अपनी 'ईगो' को संतुष्ट कर सके। अपनी ही समाधि पर अपना ही अभिषेक कर वह आत्मतुष्टि का भाव प्राप्त करना चाहता है—

1. कड़ी धारा, प्यार चन्द साथी, पृ. 46
2. अनचीन्हा परिवेश, सुधा गुप्ता
3. सीप बन गोई परछाइयाँ, कपिसिंह नीरज, पृ. 66

मेरा मन कुत्ते की दुम है
अर्द्ध वृत्त सा
लेकिन इसकी परिधि नहीं है
परिधि रहित है, व्यास रहित है
इसके केन्द्र बिन्दु में केवल
टिक सकता कम्पास समय का ।[1]

यह कवि का गेय बन जाता है । वह सामयिक-संदर्भों के परिप्रेक्ष्य में पौराणिक प्रतीकों की छलना पर चोट करता है और जीवन के प्रति आस्थावान स्वरों में अपने मृत्यु जय होने की घोषणा करने लगता है—

'मृत्यु हो नहीं सकती अब/नियति उसकी/क्योंकि अपने सत्य का वह बन गया है स्वयं साक्षी/वह समझता है/स्वयं जितना झेलना/राग की झूठी शिरायें/रक्त के आवेश में भर/छल नहीं सकती उसे अब/हो भले अर्जुन/तुम्हारा सुत नहीं अभिमन्यु/तुमने वीरता की लीक को/अर्पित किया वह/किन्तु उसने व्यूह की भीषण घुटन में/लीक अपनी ही बनाई/...... इसलिये अपने पक्ष की/घोषणा मैं कर रहा हूं/कर रहा हूं/जिन्दगी मेरी नियति है...... सत्य अब गीता नहीं है/क्योंकि मेरे युद्ध में वह है मुझे कायर बनाती/.......... राम मुझ को छल रहे हैं/मैं बना खोजूं/किसी वाल्मीकि का घर/और वह भी तो/भोगने देना नहीं/भोगती सीता जिसे/...... झूठा इतना/झूठा भीषण/झेल मैं सकता नहीं हूं/इसलिये मैं हर चिता से/सिर उठा कर यह कहूंगा/मैं कभी मरता नहीं हूं ।[2] वह अपने अस्तित्व की सर्वव्यापकता की घोषणा यह कहते हुए करता है कि मैं ही आकाश हूं, मैं ही गंध हूं, सूरज, फूल सब मैं हूं—यही नहीं—मैं इनसे भी अधिक हूं । अपने अस्तित्व की इस विराटता की अनुभूति वह इन शब्दों में करता है—

एक आकाश मेरे चारों ओर फैला है
एक गंध मुझे सब ओर से घेरती है
दूर चमकता है एक पुराण सूरज
हाथ भर फैलाव में हंसता है एक छोटा फूल
एक शब्द मुझे सब से जोड़ता है ।

---

1. 'मन के प्रयोग' कविता, प्रकाश आतुर ।
2. यह मेरा गेय, डॉ. दिनेश, पृ. 14–18

सम्भाशून्य हो गया है सूर्य
और हम सब
अकेलापन महसूस करते हैं।[1]

2. धूप पीती दीवारें
अंधेरे का काला लबादा ओढ
समुद्र में कूद रही हैं।
जीवित रह पाना कितना कठिन हो गया है
इस दिगम्बर संसार में।
प्रस्ताव पर प्रस्ताव
झूठी और बेबुनियाद दलीलें
और खोखले समर्थन
प्याज के छिलके की तरह जमे हुए हैं।

❀ ❀ ❀

और हम क्लीव बन, निरुद्देश्य
इधर से उधर भटक रहे हैं।[2]

कवि को संत्रास और निराशा के क्षणों में जीवन-यात्रा धुंधली, सुनसान और अर्थहीन प्रतीत होने लगती है। यह यात्रा उसे महज 'टांगों का जुलूस' के अतिरिक्त कुछ भी अनुभूति नहीं देती।

"और पैर चल रहे हैं/सिर्फ पैर और टांगें/और भटकी हुई/उलझी हुई/टिटकती हुई/टांगों का जुलूस/दृष्टियां सब चेहरे नहीं पहचानतीं/क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति का चेहरा विकृत हो गया है/यह लम्बी यात्रा है/धुंधली और सुनसान/हम छायाओं का अनुसरण कर रहे हैं।"[3] यह अनुभूति मणि मधुकर में और अधिक व्यापक रूप में अभिव्यक्त हुई है। अनवरत टूटते क्षणों के बीच, संवेदन-शून्य सूर्यास्तों के आलोक में वह जुड़े हुए चेहरों को भी नहीं पहचान पाता। सारे विकल्प व्यर्थ में झकझोर दिये जाते हैं और मथन की क्रिया उसे व्यर्थ प्रतीत होती है।

1. चांद के दाग—अमर मेवाड़ी, पृ. 11
2. वही, पृ 13
3. प्रयास—सतीश वर्मा, पृ. 9

उनकी दृष्टि के यात्रा-वृत्त, संत्रासों के आरामगाह बन जाते हैं। यह भटकाव उसे आल्हाद और आक्रोश के एकान्तों को टोहने की विवशता से भर देता है—

दृष्टि के यात्रा–वृत्तों में
रह–रह कर विरामते हैं
मौन गर्भा संत्रासों के उच्छ्वास
❀ ❀ ❀
कहां है आल्हाद और आक्रोश के
एकान्त ?
छद्मवेशी सम्मोहनों के पार
किस बिन्दु को टोहती हैं
मेरी नंगी बैसाखियां ?[1]

छायावादी कुंठाओं में अनुभूत सत्य अधिक है और उसकी तुलना में प्रयोगवादी कविताओं में अभिव्यक्त संत्रास, घुटन, कुंठा आदि अधिकांशतः या तो आरोपित हैं या मात्र फैशन। लेकिन यह भी सही है कि मध्यवर्गीय विकृतियों और कुंठाओं से भरे मुखौटाधारी जीवन को इन कवियों ने नये शिल्पगत प्रयोगों द्वारा रूपायित किया है। कथ्य की नवीनता के कारण ही शिल्प, स्वतः नया हो गया है। यह घुटन और नैराश्य, यह व्यथा-बोध नये–नये क्षितिजों का स्पर्श करता है। नया कवि घुटन से छटपटाता है और मुक्त होने के लिये हाथ–पांव पटकता है—

आखिर यह बंदिश क्यों
मैं अपने आंसू भी न पी सकूं
दीवालिया भाग्य पर बुदबुदाता रहूं
हर बार हर घड़ी।[2]

इस घुटन में भी वह अपने परिवेश से, बड़ी मजबूती के साथ जुड़ा रहता है। सन्त्रास के अंधकार में भी उसे रोशनी की तेजधार की याद बनी रहती है क्योंकि वही उसका प्राप्य है—

सब और उखड़े हुए
डेरे में मीलों तक फैले हुए दुख और मरुस्थल
के घेरे में–रोशनी की एक

---

1. लहर, अक्टूबर, 65 में मणि मधुकर की कविता।
2. नीन जल सोई परछाइयां–जयसिंह 'नीरज', पृ. 39

तेज धार
हमें भाती है बार–बार ।[1]

निराशा के क्षणों में वह 'मैं न मैं आश्वस्त हूँ/अब मेरी आँखों में कोई कमल नहीं जनमेगा'[2] की अनुभूति करता है और एकान्त का खालीपन उसे महसूस कराता है—' आह/भेड़ियों के झुण्ड के बीच/छोड़ दिया गया हूँ अकेला/तोड़ दिया गया हूँ/बेजुबान पत्थरों की तरह ।[3] यह विवशतापूर्ण कराह, दमघोंटू कड़वाहट, सामाजिक मान्यताओं का कटघरा आदि इस नये कवि की विवशतायें है और इन सब से

चरण श्लथ हो गये हैं और शब्दों की
ह अपेक्षा कुछ नहीं करता, लेकिन अपने
ना । वह शिकायती स्वर से कहता है—

यही विवशतापूर्ण निरीहता, सार्थकहीन अस्तित्व का यह बोध, उसकी लायनवृत्ति को जागृत कर देता है। यह स्वय को टूटी पंक्ति और खण्डित कामनाओं का प्रतीक मानने लगता है। यह निराशा उसके अंतराल को इतनी गहराई तक प्रभावित करती है कि वह स्वय को जीवन का भोक्ता नहीं, मात्र दर्शक अनुभव करने लगता है। आपाधापी और छीना झपटी के इस युग मे, कवि निरीह बना, उड़ते गर्द-गुबार को देखता रह जाता है—

> क्रम आई और चली गई। मैं टूट पंक्ति का। खण्डित कामनाओं का।
> वंचित आशाओं का निरीह साक्षी सा, दूर खड़ा रहा।
> केवल पीछे उड़ती गर्द मेरे हाथ लगी। जो मेरी ही तरह
> पीछे धकेल दी गई थी। जो सहानुभूति दिखलाने
> मुझ समान धर्मी के पास आई थी।[1]

मृत्यु की काली चादरवाली नदी को वह भूल नहीं पाता। वह अपनी सीमित क्षमता से परिचित है और अन्धकार की काली चादर मे उसे 'ईसा' और 'मारले मुनरो' के चेहरो मे कोई भेद प्रतीत नहीं होता। गहरे अवसाद मे डूबा, निर्लिप्त, इच्छा शून्य, अगम्य-अभी चेहरों मे उसे एक ही साम्य-साम्य देखने को मिलता है—

> फिर आकाश के कगार से थका सूर्य धीरे-धीरे नीचे उतर जायगा और मैं
> उन दूर की चोटियो। मटमैली कुबड़ी चट्टानो। चिमनी के घुमावदार धुए मे
> देखता बैठा भी रहूंगा तो क्या होगा? अभी सूर्य निकलेगा नहीं
> इस अंधकार मे मुझे काले जल वाली नदी बार-बार याद आयेगी
> जिसकी रेत मे आत्महत्या की छोटी सी चीज गड़ी हुई है। आह ईश्वर
> तब ये दोनों चेहरे अंधकार से फिर उठेंगे। मुझे महसूस होगा
> इन क्षणो मे ईसा और मारले मुनरा के चेहरे एक से हैं
> निर्लिप्त, इच्छा शून्य, अगम्य।[2]

कवि अपनी वैयक्तिक पीड़ा को, उसके संदर्भ इतिहास को, लोगों को नहीं बताना चाहता। उसकी वेदना न कोई 'पैम्फलेट' है और न उसका दर्द कोई 'पोस्टर' है जिसे वह हर मोड़ पर, हर दीवार पर चिपका दे। वह तो अपनी ही बीमारी को जीना चाहता है।[3] वैयक्तिक कुंठा के कारण उसके कथ्य की टूटन छंद की टूटन

---

1. 'मधुमती', टूटी पंक्ति, खंडित कामनाएं—मूलचन्द पाठक
2. लहर, मार्च, 67—नन्द चतुर्वेदी।
3. अधरो का विद्रोह—रामदेव आचार्य, पृ. 7

में अभिव्यक्ति पाती है और अपाहिज जिंदगी, जिसके सारे गुलाब मर गये हैं, खण्डित आदर्श के रूप में वह स्वीकार करने को विवश हो जाता है। स्वयं के सम्बन्ध में सभी प्रश्न उसे अनावश्यक प्रतीत होते हैं और सारी टूटन और विघटन को वह अपने लिये अनिवार्य मानने लगता है। वह मन के भीतर टूटती आवाजें सुनता है और दर्द ही उसके निमित्त मधुरतम गीत बन जाता है। सामाजिक व्यवस्थाओं ने उसके जीवन सौन्दर्य को चर लिया है और अब, घुटन जैसे उसकी तलाश में भटकती रहती है। इस अपाहिज जिंदगी के खण्डित आदर्शों का गीत वह शैल्पिक प्रयोग कर सुनाने को उत्सुक है।[1] कवि की विवशता यह है कि वह उजाले के अन्तिम क्षण तक भटके हुए प्रश्नों के भेद खुलने की राह देखता है किन्तु अन्धेरे के आते ही उसके सामने मात्र विकल्प यही रह जाता है कि वह टूटे संदर्भों के टुकड़ों को जोड़ कर उन्हें नये संदर्भों में रूपायित करे।[2] इन्हीं संदर्भों में वह कभी स्वयं को नकारने लगता है और कभी स्वीकारने लगता है। वह न तो किसी का दर्पण बनना चाहता है और न विज्ञापन।[3] वह नगर बोध के सन्त्रास से परिचित है और उसे व्यक्तित्व के खो जाने का भय है --

> मत छिड़को
> मुट्ठी भर बीजों को
> एक ही जगह शहर उग जायेगा
> एक दूसरे के व्यक्तित्व को
> भीड़ खा जायेगी।[4]

शहर का यह 'वन खण्ड' ऐसा है जिसमें सब के सम्बन्धों के बीच अपरिचय का विन्ध्याचल है। मणि मधुकर ने 'दावत' शीर्षक कविता में एक औरत को प्रतीक बनाया है जो अपनी मंजिल की तलाश में है लेकिन कोई राह नहीं बताता। रात के अन्धेरे में, 'वक्त से टूट कर' अलग पड़ी उस औरत को, वे ही लोग जो दिन में उससे कतरा कर निकल गये थे, वहशी बन कर नोचने लगते हैं। बड़े शहरों का यह वहशियाना-अजनबीपन, नगरीय-सन्त्रास को संवेदना के धरातल पर मार्मिक अभिव्यक्ति देता है।[5] इस शहरी-सन्त्रास से कवि का मन इतना दुःखी हो जाता है

1. अंगारों का विद्रोह–रामदेव आचार्य, पृ. 34
2. नुची चिड़िया, चौड़े रास्ते–कन्हैयालाल सेठिया, पृ. 13
3. वही, पृ. 29
4. वही, पृ 55
5. 'दावत', धर्मयुग–मणि मधुकर

कि वह 'धूप के दिनों' के दर्द को भी नहीं भूलता। हर सुबह, जब अपना 'सौनजुही तन लेकर इस महानगर के कोलाहल के बीच उतरती है तो कवि का मन आशंकित-सन्त्रास की पीड़ा में डूबने लगता है। सकम्प की हर सांस और धड़कन का मोल करना उसके दुःख को और गहरा कर देता है।[1] इस विस्तृत, अछोर फैले सीमाहीन जगत में उसे अकेलापन सालने लगता है और वह पर्वतों, पगडण्डियों, रेगिस्तानों और नीले आकाश तथा उसमें घूमते ग्रहों, धूमकेतुओं, नीहारिकाओं और ज्वलते सूर्य के बीच दिग्भ्रमित सा भटकता रहता है। उसे अपने रास्ते की तलाश परेशान किये रहती है और वह बेचैन बना, दौड़ता, हांफता, अपनी मूल्यवान जिंदगी को भटकाव के क्षणों में जीता है।[2] उसे अपना एकान्त चीखता हुआ प्रतीत होने लगता है और शान्त, मधुर, नीली धमनियों में विष-प्रवाह की अनुभूति होने लगती है।[3] उसे अपना समूचा व्यक्तित्व शव-यात्रा में सम्मिलित व्यक्ति की अनुभूति देता है और यह भोगा-यथार्थ उसे विस्मित करता है कि महानगरीय-कोलाहल में मृतक के प्रति कोई संवेदनशील नहीं होता। मरने का अहसास, नगर-बोध में जैसे अपना महत्व खो चुका है।[4] महानगरों की यह भीड़, व्यक्ति को, जंगल में खोये एकाकीपन की अनुभूती देती है। अर्थहीन ध्वनियों का कोलाहल मेह का वंशी-स्वर या आकाश का गर्जन कुछ भी नहीं सुनने देता। कवि को भय लगता है कि कहीं यह बेमतलब कोलाहल उसके स्वर को ही अनजाना नहीं बना दे—

"मैं भीड़ से घिर गया हूं। जिस भीड़ में मेरा मन नहीं मिलता। इस भीड़ के बेमतलब स्वर। सुनने ही नहीं देते। स्नेह की मीठी वंशी। गोप का घनघोर गौरव। भीड़ ने ढक लिया है। मन आंगन। सावन का अनवरत गिरता जल। उस तक पहुंच नहीं पाता। डरता हूं। स्वरों से अनजाना नहीं हो जाऊं। भीड़ के शोर को सत्य समझ। कहीं नहीं खो जाऊं।[5]

शहरी स्वार्थपरता की अनुभूति का एक और चित्र द्रष्टव्य है—

अपने सुख के लिये
तुम दूसरों का गला दबा सकते हो
इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं है

---

1. एक उजली नजर की सुई–हरीश भादानी, पृ. 17
2. सूरज सब देखता है–जुगमन्दिर तायल, पृ. 10
3. वही–वही, पृ. 32
4. बैंयकिंग सलहों पर हम–तारादत्त निर्विरोध, पृ. 16
5. शब्दों का घूंघट–मरुधर मृदुल, पृ. 27

कुछ कर नहीं पाता। वह शापग्रस्त तो है लेकिन सब कुछ आलोकित कर देने की आकांक्षा के उपरान्त भी वह कुछ नहीं कर पाता। केवल विवशता, सन्त्रास और घुटन के अतिरिक्त उसे कुछ मिलता नहीं है—

> दिशाओं तक मेरा हाथ जाता है। लेकिन कुछ छूता नहीं है
> थोड़ी देर के लिये एक प्रकाश जनमता है। फिर डूब जाता है
> डूबता जाता है। डूब जाता है।
> मैं शब्दों के लिये फिर घूमता हूं। फिर-फिर प्रकाशित करना चाहता हूं
> नदियों के फैलाव और इन्द्रधनुष। अर्थ और आत्मा और अग्नि
> प्रेम और दर्द और अन्तरंग। लेकिन कोई कृति नहीं जनमती
> सब तरफ स्वादहीन सृष्टि फैली रहती है। मैं फिर होता हू,
> होता हू।[1]

क्षणवादी भावनायें, इन कवियों के गहरे संस्कार के रूप में प्रतिष्ठित हैं। लारेंस, वर्ग सा, ज्यां पाल सार्त्र, आदि चिन्तकों के विचारों ने इस दिशा में उनकी मान्यताओं को प्रभावित किया है। जिये जाने वाले क्षण से बड़ा सत्य, इनके लिये कुछ भी नहीं है। 'अल्टीमेट' में इनकी आस्था नहीं है और उपलब्ध क्षण को खुल कर भोगने और जीने का विशेष आग्रह इन कवियों ने किया। अनागत की अपेक्षा वर्तमान के प्रति और विशेषत. उपलब्ध क्षण के प्रति आस्था, इनमें धर्म की भांति प्रतिष्ठित है। प्रयोगवादी काव्य में जो निराशा और कुंठा व्याप्त है, उसका मूल कारण यह क्षण भोग की स्थिति भी हो सकती है जो अपूर्ति के क्षणों में, व्यक्ति को कुंठाग्रस्त कर देती है। उपलब्ध क्षण को भोगने का सुख उसे हर्षित एवं तुष्ट करता है और जिये जाने वाले हर क्षण को वह समय-सदर्भ से काट कर एक स्वतन्त्र इकाई के रूप में भोगता है। एक क्षण की प्रत्यानुभूति को कवि विस्तृत परिप्रेक्ष्य के सदर्भ में प्रस्तुत कर शब्दों का 'लेण्डस्केप' प्रस्तुत करने लगता है।[2] एक सरसरी दृष्टि में जो कुछ अनुभूत हो जाय, उसी को सत्य का एक खण्ड मानकर अनुभूत क्षण के अस्तित्व की सार्थकता को वह मूर्त रूप देने का प्रयत्न करता है। लक्ष्मीकान्त वर्मा के शब्दों में,' कविता के लघु परिवेश में उस छोटे से छोटे क्षण के प्रति भी आस्था है, जिसे अब तक महत्वहीन समझकर मानव इतिहास ने अवहेलना की दृष्टि से देखा था। जीवन के प्रवाह में इन महत्वपूर्ण क्षणों को अौचित्य आज के सौन्दर्य-बोध और मानव-बोध को अधिक व्यापकता और बहुलता प्रदान करता

1. लहर, नवम्बर, 66—नन्द चतुर्वेदी।
2. मैं आंगिरस-ऋतुराज, पृ. 45

है। जीवन की यह दृष्टि और इससे सम्बद्ध उसकी उपलब्धियाँ उन समस्त कुण्ठाओं का परिष्कार भी करती है जो व्यापक रूप में इस युग में कवि के अंतर को त्रास एवं अवसाद से उबारने में समर्थ रही है।[1] ताम्र के साथ एक चित्र देखिये—

> इन्तजार कीजिये
> मेरा शुभ होने में जरा देर है
> अभी तो मस्तक पर स्वर्ण बिखेरा जा रहा है
> मोरमुकुट धारण किया जा रहा है।[2]

क्षण मात्र की अनुभूति नन्द चतुर्वेदी के काव्य की विशिष्टता रही है। क्षण की महिमा के सम्बन्ध में उनका कथन द्रष्टव्य है—

> और क्या है भूमि की अनुभूति में ?
> एक क्षण है
> स्वप्न है पूरे, अधूरे, दुःख सुख के
> एक क्षण उद्दाम प्राणों की पिपासा
> एक क्षण है फूल की अविजित सुरभि का।[3]

काम-काज आपाधापी की इस दुनियां में आत्म-दर्शन के लिये एक क्षण मिल जाय तो सब कुछ मिल गया। इस स्थिति का एक चित्र है 'शेष फिर' कविता में—

> मुझ को दो एक क्षण
> जिससे मैं भेंट सकूं
> जो कुछ मैं हूं उस सब से
> आज बस इतना ही–शेष फिर, शेष फिर।
> मुझ को दो एक शब्द
> जिससे मैं देख सकूं
> जन्म मरण, तृषा शमन,
> आज बस इतना ही, शेष फिर, शेष फिर।[4]

---

1. नई कविता के प्रतिमान–लक्ष्मीकान्त वर्मा, पृ 4
2. धूप भरी सुबह–जुगमन्दिर तायल, पृ. 20
3. 'लहर', नवम्बर, 62–नन्द चतुर्वेदी।
4. राजस्थान हिन्दी कवि, भाग 1–नन्द चतुर्वेदी।

स्तित्व-बोध की दृष्टि से उपलब्ध क्षण के उपयोग का एक चित्र देखिये—

पड़ोस की लड़की
कितनी चालाक है
बेसुरा हारमोनियम बजाती है
संगीत साधना नहीं
अपनी उपस्थिति का बोध कराने के लिये।[1]

व ने एक-एक क्षण को भोगा है, उसे पूरी ईमानदारी से जिया है——

अभी-अभी डूबे सूरज की
दिन भर की कुनमुनी भील को
सांस-सांस भर पिया गया है
एक-एक क्षण जिया गया है।[2]

वि शान्ति भारद्वाज, सिग्रेट का धुंआ छोड़ते हुए उस क्षण के विचारों को अतीत
तरीव के साथ जोड़ कर जिन्दगी को हर क्षण विस्तार देते हैं—

सिग्रेट जला कर धुंआ छोड़ता हूं
गुजरी बातों को जोड़ता हूं
घने जंगल में भटकती आत्मकथा को
चौराहे की ओर मोड़ता हूं।[3]

क्षण का यह सूत्र, विचार पक्ष की प्रधानता को प्रस्तुत करता है। जीवन की व्यस्तता और मधुरता के वातावरण में क्षण मात्र की चाह या क्षण मात्र की अनुभूति की सशक्त अभिव्यक्ति राजस्थान के अनेक कवियों के काव्य में हुई है। समय के वेग में बहने वाली धार की एक-एक लहर को कवि ने जिया है[4] और क्षणों के पृष्ठों को जोड़कर उनसे सुदृढ़ जीवन सम्बन्ध स्थापित कर, मन को उल्लसित किया है।[5]

1. कविता, मार्च, 66—प्रकाश आतुर।
2. एक उजली नजर की सुई—हरीश भादानी, पृ. 13
3. समय की धार—शान्ति भारद्वाज, पृ. 60
4. वही, अन्य कविताएं।
5. 'क्षणों के धागे' की रचनाएं—कन्हैयालाल सहल।

इस नई धारा और नये भाव-बोध के कवियो ने सामाजिक वैषम्य, निराशा, कुंठा, घुटन, मुखौटाधारी दुहरे व्यक्तित्व और मध्यमवर्गीय विद्रूपताओं पर सशक्त व्यंग्य प्रस्तुत किये हैं। उन में कहीं झुंझलाहट है, कहीं आक्रोश है और कहीं ढेला मारने जैसी बात भी है। कवि ने मन की कड़ुवाहट व्यक्त करते हुए सामाजिक असंगतियो पर पैने व्यंग्य के नश्तर, नये शिल्प-माध्यम से लगाये हैं—

1. और अचानक उग आता है
   करोडों कटी भुजाओ की
   फौलादी नींव पर खडा
   एक अय्याश ताजमहल।

   ꕥ ꕥ ꕥ

   अमूडो मे पल रहा पी. एल. 480 का आयातित घाव
   खाने को पाता है विटामिन बी काम्पलैक्स और
   गर्भ निरोधक गोलियां। गेरुआ कपडों में लिपटी
   आदिम देह हाथो मे कोकशास्त्र ले कर
   पढ़ती हैं सूर्यमुखी आंखो से।[1]

2. बेशर्म गुलामो के रिसते हुए नासूर। चमकीले मैनीफैस्टो और
   पोस्टरो की।
   पोशाक पहन कर जादुई पुतलो की तरह। नाचते हैं। जादूगर
   तेंदुए कलाकार।

मगरमच्छ विदेशी मुद्रा कमाते हैं संस्कृति/और/इतिहास के रंग बीन कर/सचलाइट फेंक कर करते हैं शिकार/बेहोश होती सभाओं का/मेरी आंखो से बारूदी फूल/झडते हैं और आवाज/कातर पुकारों के तेज होते स्वरो में/घुल जाती है/पार्कफैस्ट की तरह।[2]

सामयिक संदर्भों मे लिखी कविताओ में कवि की पैनी दृष्टि, करारा व्यंग्य कर जाती है। हमारी स्वातन्त्र्योत्तर उपलब्धियों पर कवि चोट करते हुए कहता है—

सोग एक पवित्र भाव से
झण्डे के नीचे खड़े होते हैं

1. कल्पना, 30 मई, 68—भागीरथ भार्गव, पृ. 196

लेकिन एक बन्द गले का कोट
रस्सी खींचता है
एक रस्म रोती भींकती पूरी हो जाती है।

ॐ ॐ ॐ

हिन्दुस्तान की सभी लड़कियाँ
उम्र के पहले बूढ़ी हो जाती हैं
उम्र के बहुत पहले आदमी की खोपड़ी
भुने हुए नारियल की तरह लगने लगती है।[1]

तथा—

आज के मसीहाओं के चेहरे पीले पड़ गये हैं
झूठ बोलते उनके गले में गिल्टियां उभर आई हैं
सब जगह आयोडीन और क्लोरोफार्म की गंध
बेहिसाब फैल रही है।[2]

इन व्यंग्य प्रधान रचनाकारों ने जागरूकता के साथ अपने सामाजिक परिवेश के
प्रति ईमानदारी प्रदर्शित की है और 'लघुमानव और उसके परिवेश की स्थापना की
है। इन्होंने अपने यथार्थ उपलब्ध क्षण के साथ सीधा साक्षात्कार किया है और
पुराने जीवन-मूल्यों के जर्जरित वैभव को लेखनी के तीखे हथियार से बड़ी कटुता
के साथ विवेचित और प्रहारित किया है। इनमें कटुता उभरी है लेकिन 'इस कटुता
के पीछे जो आत्म-विह्वलता है, वह मूल्यवान है।' आधुनिक भाव-बोध ने इन
कवियों को परम्परा से विद्रोह करने के लिये प्रेरित किया है। अधुनातन 'ड्राइंग
रूमी' सभ्यता के खोखलेपन पर एक प्रहार करते हुए कवि ने जीवन की विडंबनाओं
और विसंगतियों को चित्रित किया है—

मिलन कक्ष की सज्जा
मेरे आडम्बर की अभिव्यक्ति है, जीवन की नहीं।
फर्श का यह कीमती कालीन
उस पर जमे सोफ़, पर्दे
दीवारों के रंग

और उस पर लगी है टंके
बुद्ध, गांधी, टैगोर
विवशताओं की अभिव्यक्ति है, जीवन की नहीं।
पानी की मुस्कानें गिरवी रखी गई है
इन सब के लिये बच्चो के गालों की सुर्खी बिकी है
उनके भीतर जनमते एक इन्सान का गला घोटा गया है।[1]

व्यक्ति के बदलते हुए गिरगिटी व्यवहार ने कवि को विरूपताओं के प्रति कटु बना दिया है और वह यथार्थ की अवहेलना पर, सत्य की हत्या पर आक्रोश से भर कर झुंझलाने लगता है।[2] व्यावसायिक युग के परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाली प्रेम की विकृतियों पर व्यंग्यपूर्ण दृष्टिपात कर वह भवानी मिश्र के 'गीत फरोश' की भांति 'प्यार फरोशी'[3] की बात कह कर प्रेम की तथाकथित नैतिकता एवं भावुकता का उपहास करने लगता है। आत्मस्वीकृति के रूप में कुछ कवियो ने सबकी आत्मा का दर्पण प्रस्तुत कर, जीवन-विकृतियो पर सहज भाव से व्यंग्य प्रस्तुत किये हैं। एक दो उदाहरण दृष्टव्य है—

1. हम सब शुतुर्मुर्ग हैं
   धोखे मे धसते हैं रेत मे सिर दे कर
   रक्षित समझते हैं
   बतियाते हैं बहुत, पर कुछ नहीं करते।[4]

2. दायरे से ताकते हैं
   सिकुड़न कर्म है, विस्तार ही अधर्म है
   आंगन में बैठना, बहुत बड़ी शर्म है।[5]

3. हम सब रेस के घोडे हैं
   जिन्दगी की ऊबड़ खाबड सड़को पर

1. अहं मेरा गेय–डा रामगोपाल 'दिनेश', पृ. 56
   दृष्टव्य–आदमी, मोहर और कुर्सी–नरेन्द्र भानावत, पृ. 25, 64
2. असरो का विद्रोह–रामदेव आचार्य, पृ 12
3. ये सपने ये प्रेत–रणजीत, पृ. 87

धर्म, ईमान की फसलों को रौंदते
बिजली से कौंधते, बेलगाम, बेसवार दौड़े हैं।[1]

4. हम श्मशान से दूर
शहर के मुर्दे हैं
जिन्हें पाँच साल बाद
एक और वोट का अधिकार है
इन्कलाब होटलों में जिंदा है
पत्रिकाओं और कमरों में सांस लेता
सड़क पर उसका दम घुटता है।[2]

5. हर आवाज पकड़ता हूं, सब तक पहुंचाता हूं
मेरे पास अपना कुछ नहीं है, मैं एरियल हूं।[3]

राजस्थान के हिन्दी कवि ने काव्य की इस नई शैली को समृद्ध करने में अपना महत्वपूर्ण योग दिया है। भाव, भाषा, सब में कवि ने कथ्य के अनुसार परिवर्तन किये हैं। इनमें से अधिकांश कवि, पूर्ववर्ती काव्य-परम्परा के प्रतिनिधित्व हस्ताक्षर बन कर उभरे और मील का पत्थर सिद्ध हुए और समय के साथ उनकी प्रतिभा ने नये सीमान्तों तक फैल कर अपने युग बोध की सजगता का परिचय दिया। प्रान्त की श्रेष्ठ पत्रिकाओं ने इनके सृजन को समय-समय पर प्रकाशित कर, इनकी सृजन-क्षमता को उजागर किया। 'वातायन',[4] 'लहर',[5] 'बिन्दु',[6] 'मधुमती',[7] 'सम्बोधन',[8] 'कविता',[9] आदि पत्रिकाओं के माध्यम से प्रान

1. 'समय की धार'—शान्ति भारद्वाज।
2. 'अंजुरी भर वन'—कैलाश जोशी।
3. दीप से दीप जले—कैलाश जोशी, पृ. 60
4. वातायन—सं. हरीश भादानी, पूनम दइया, प्रकाशन—बीकानेर।
5. लहर—सं. प्रकाश जैन, मनमोहिनी, प्रकाशन—अजमेर
6. बिंदु—सं. नंद चतुर्वेदी, प्रकाश आतुर, नवलकिशोर, नेमनारायण, प्रकाशन—उदयपुर
7. मधुमती—सं. ज्ञान भारिल्ल (56-62) शांति भारद्वाज (62-68) प्रकाश आतुर (68-69) मंगल सक्सेना (69-75) नवलकिशोर (75-76) जुगमंदिर तायल नंद चतुर्वेदी आदि, प्रकाशन—उदयपुर
8. ... मेवाड़ी, प्रकाशन—कांकरोली
9. ...सं. भागीरथ भार्गव, प्रकाशन—अलवर

की प्रतिमाओं को भारतीय स्तर से जुड़ने का सुयोग मिला। ये पत्रिकाएं हिंदी जगत में चर्चित होती रही हैं और स्तर की दृष्टि से इन्हें देशव्यापी ख्याति और सम्मान मिला है। नव-बोध के संदर्भ में सृजन तो सारे देश में हुआ, लेकिन एक साथ इतनी श्रेष्ठ पत्रिकाओं का प्रकाशन सम्भवतः राजस्थान से ही हुआ है।

प्रमुख कवि

डॉ. कन्हैयालाल सहल की राजस्थान में प्रयोगवाद और नई कविता के प्रारम्भिक सूत्रधारों में उल्लेखनीय भूमिका रही है। पिलानी निवासी सहल जी प्रान्त के वयोवृद्ध, अनुभव-सम्पन्न कवि, आलोचक एवं निबन्धकार थे। 'प्रयोग', 'क्षणों के धागे' तथा 'समय की सीढ़ियाँ' इनकी प्रकाशित काव्यकृतियाँ हैं।' सहल जी मूलतः प्रबुद्ध विचारक और चिन्तनशील व्यक्ति थे अतः उनके काव्य व्यक्तित्व पर चिन्तक-व्यक्तित्व निरन्तर हावी रहा है। उनके काव्य का बुद्धिपक्ष बड़ा प्रबल है। उन्होंने आस्थावादी दृष्टि से परम्परा और प्रयोग को क्रमिक विकास के संदर्भ में देखा। डॉ. रामकुमार वर्मा, स्व. माखनलाल चतुर्वेदी और डॉ. रामविलास शर्मा प्रभृति विद्वानों ने उनके काव्य-शिल्प की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। वे अपने के प्रति पूर्ण सजग रहे और युगबोध व भावबोध के बीच संतुलित चिन्तन, भाषा सौष्ठव और गतिशील विचारों को उनकी कविता में आश्रय मिला है।

'समय की सीढ़ियाँ' कवि की प्रौढ़तम काव्यकृति है। यह मुख्यतः 'काल' 'समय-चिन्तन' पर आधारित है। यह कालचिन्तन ही उनकी पूर्ववर्ती काव्यकृतियों का मेरुदण्ड रहा है। जीवन के अत्यधिक सामान्य कार्य-व्यापारों और घटना-प्रसंगों के माध्यम से उद्भूत उनका कालचिन्तन, काव्य-बद्ध होकर कोई न कोई महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष दे जाता है। उनकी दुर्बलता है काव्यात्मक प्रतिभा के अभाव और यथार्थ प्रवाह की विशृंखलता भी। इसी कारण प्रयोगवाद के प्रारम्भिक पुरोधा और विकास के सहयोगी होने पर भी वे स्वयं अपने काव्य-बोध को नई कविता के अनुरूप [illegible] और शिल्प का उत्कर्ष नहीं दे पाये। एक ही चिन्तनधारा, जो उनके प्रारम्भ के काव्य-लेखन में है, अन्तिम काव्य-संकलन तक अपनी ही तरह [illegible] और, [illegible] होकर [illegible] रही है। राजस्थान के [illegible] नई कविता के [illegible] रूप में उनका [illegible] स्थान है। एक [illegible] उदाहरण है—

[illegible]

प्रो. नंद चतुर्वेदी की चर्चा पूर्व में गीतकार और प्रगतिवादी कवि के रूप
ी जा चुकी है। नये भावबोध वाली प्रयोगधर्मी कविता और नई कविता के
ां मे भी उनका काव्य विशेष रूप से चर्चित रहा है। 'यह समय मामूली नहीं',
ा प्रकाशित काव्य सकलन में जिसमें नये भावबोध की कवितायें सकलित हैं।
ा शिल्पगत प्रयोगों, सांकेतिक भाषा-शैली और व्यापक अर्थबोध ने उनके काव्य
ारिमा दी है। उनकी नई कवितायें समय से साक्षात्कार कराती हैं और कभी-
' ऐसी यात्रा पर साथ ले चलती हैं 'जहां युग-परिवेश की तह में' छिपे सत्य से
कार होती है। ... ...यों और विद्रूतियों के परि-
... सजग है। अपने समय की
... दी है और प्रकारान्तर से
ने अपने समय का दस्तावेज कविता के माध्यम से प्रस्तुत किया है। उनकी
ता व्यापक मानवीय प्रतिबद्धता से जुड़े उन सारे प्रश्नों की कविता है जो
ोली के पक्ष में है। उनकी कविता की बुनावट मे वे सारे सवाल जवाब हैं जो
य को बेहतरीन बनाने के पक्ष में हैं। एक जड़ काव्य-परम्परा को काटते हुए
चतुर्वेदी कविता को वहां तक ले जाते हैं जहां भाषा और कथ्य अलग-अलग
रह जाते—"उनके लिये कविता, इतिहास की अन्तर्ग्रथित सश्लिस्ट जानकारी
हिस्सा है तथा कविता की सार्थकता समय को पूरी प्रामाणिकता के साथ
की आंतरिकता को प्रकट करने में है।" उन्होंने यथास्थितिवाद की पर्त को हर
द पर तोड़ा है।

रचनाकार की स्वाधीनता के प्रबल पक्षधर नन्द चतुर्वेदी ने ऐसे समय में
चेतना तक को खरीदने की साजिश हो रही है, कविता की सार्थकता की घोषणा
ते हुए कहा है—

"मेरी कविता/ऐसे खिन्न और निष्फल समय में/ इस अन्धकार के ठिकने
रे के ईर्द-गिर्द/एक गर्म शब्द, ईंट, पत्थर/किसी भी तरह रहो/यह प्राणरक्षा
समय है/अलंकरण का नहीं/मेरी कविता/ऐसे समय जब आदमी असहाय हो/
सार्थक रहो/शास्त्र रहो।"

नन्द चतुर्वेदी की कविता पर आलोचक श्री माधव हाडा की यह टिप्पणी
व्य है—"नन्द चतुर्वेदी की कविता समकालीन काव्य-परिसर मे अपने विशिष्ट
व और सामाजिक अभिप्राय के लिये चर्चित रही है लेकिन इन कविताओं के
तरिक रचाव और सहज अनुशासन को पर्याप्त सराहना मिली है। प्राय सामा-
क आग्रहोंवाली कविता में सम्प्रेषण का आग्रह इतना प्रबल और कभी-कभी
तिरिक्त होता है कि काव्यानुभव की जटिलता और वैशिष्ट्य सरलीकृत हो जाने

प्रौर बातचीत का लहजा दोनों का इस्तेमाल मणि मधुकर प्रासानी से कर लेते
कविता के प्रसफल होने का एक कारण शायद यह कि रचनात्मक संवेदना
मुहावरों, सरलीकरणों प्रौर पैगंबराना मुद्राप्रों के दबावों का मुकाबला नहीं
सकी है प्रौर उसकी गिरफ्त में प्रा गई है। कवि ने 'प्रलाप' शैली के माध्य
प्रपने परिवेश पर तीखी प्रतिक्रिया को व्यजित किया है। इसमें मणि ने स्वातंत्र्यो
खण्डित होते जीवन-मूल्यों के पाखण्ड की प्रस्तुति करते हुए समसामयिक विद्रूपत
पर प्रच्छी चोट की है।

मणि की प्रतिभा छोटी कविताप्रों में प्रधिक निखरी है। साप्ताहिक 'हि
स्तान' के 28 मई, 65 के प्रक मे प्रकाशित मणि की चार छोटी रचनाप्रों में क
उलझन नहीं है, बल्कि कवि ने प्रपने परिवेश को मजबूती से पकड़ा है—

> पत्ते सिर्फ पत्तो से मिलते हैं
> भागते प्रसगों की, दुपहर मे ठहरे हुए पेड़
> भूत-प्रेतों से हिलते हैं।

इन कविताप्रों मे शहर के बेगानेपन, प्रकेलेपन प्रौर इसी से मिलते-जुलते भावों को
समर्थ शब्दावली से प्रभिव्यक्त किया है। प्रपनी नितान्त नई कल्पनाप्रों के कारण
'टूटी हुई टापो वाला प्रश्व' बड़ी प्रभावशाली रचना बन पड़ी है। प्रपनी प्रन्य
कविताप्रों में ('स्थगित'–ज्ञानोदय, 'रात नक्शे प्रौर गलिया–लहर, 'सिन्धु घाटी मे
प्रश्व–वातायन) मणि ने प्रपने परिवेश को व्यापक बनाया है लेकिन कठिनाई वही
है जो खण्ड-खण्ड पाखण्ड पर्व' के साथ है— सारे सदर्भ जुड़े नहीं रह पाते प्रौर उनमें
बिखराव प्रा जाता है। मणि की दुर्बलता यह है कि वह सक्षम प्रारम्भ कर इतना
विस्तार देते चले जाते हैं कि बिम्ब बिखर जाते हैं प्रौर समग्र प्रभाव उत्पन्न नहीं
कर पाते। 'स्थिति छोटी कविता है–उसमें चुस्ती प्रौर कसावट है—

> पृथ्वी किसी का प्राधार नहीं
> पीले सफेद
> फफोलों की तरह उठते फूटते दिन
> वस्तुयें हैं प्रौर वे मुझ में हैं
> वस्तुप्रों के द्वारा संचरणशील
> मेरे इरादों पर हावी
> उनके प्रजीब सत्य

ठहर जाता है लंगड़े सम्बन्धों की तरह
प्राणों में एक उन्मत्त, क्षुब्ध पृष्ठ है।

'घास का घराना' मणि की नौ लम्बी कविताओं का संकलन है। इन कविताओं में राजनीतिक विद्रूपताओं और असंगतियों का न केवल कच्चा चिट्ठा है बल्कि प्रतिकार का संकल्प भी है। 'असली इन्द्रजाल' कविता फन्तासी पद्धति पर लिखित रचना है जिसमें 'राजनीतिक स्थितियों का ऐन्द्रजालिक संयोजन है और पूरी कविता में जादूगर की फंतासी का सफल निर्वाह है—

"सहसा खादी का थान/खा गया और जबड़ा खोल कर बोला/देख मैंने कुछ नहीं खाया/कोई सबूत नहीं/तमाशबीन सन्तुष्ट हो गये/थोड़ा सा हल्ला मचा/संसद में/छींटाकशी भी हुई/लेकिन/एक भी शब्द सुनाई नहीं दिया/" इस कविता में व्यंग्य, आक्रोश और यथार्थ स्थिति की पकड़ तो अच्छी है लेकिन फंतासी का मोह कथ्य के अन्त तक पहुंचते-पहुंचते संघर्ष विमुख हो, पराजय को स्वीकृति देने लगता है—"नहीं टूटेगा। यह जादू नहीं टूटेगा। मैंने उसासें लीं। और। एक अपहरण काण्ड की। तुम पकड़ कर। हांफने लगा।" इसकी तुलना में अन्य लम्बी कविता 'घास का घर' में विद्रोह का स्वर अधिक तीव्र है। अन्त भी निर्णायक हो गया है। इसमें कुछ पात्र है जो समान रूप से अत्याचारों से पीड़ित, मर्माहत हैं लेकिन विषम-स्थिति और वातावरण में भी संघर्ष की आस्था सजोये हैं। कवि को उनके दमखम और सर्वहारा वर्ग के साहस पर विश्वास है। यह लम्बी कविता, परिवेश के डिटेल्स देती चलती है। नरेन्द्रमोहन के शब्दों में, "इस कविता में जो परिदृश्यगत ब्यौरे दिये गये हैं, वे केवल दृश्य निरूपण तक ही सीमित नहीं रहे हैं, वे पाठक को दृश्य के पार भी ले जाते हैं ....परिदृश्य और कवि-दृष्टि इस कविता में इस तरह अनुस्यूत है कि उन्हें अलग कर पाना कठिन है।" इस संकलन की अन्य कविताओं में भी इसी संघर्षशील आस्था की अभिव्यक्ति हुई है।

'बलराम के हजारों नाम' छोटी कविताओं का संकलन है। इन कविताओं की धार बहुत पैनी है। अपने परिवेश की पर्त के नीचे छुपे चेहरे को कवि ने निर्ममता से उघाड़ा है और आस्था के साथ चोट की है। 'एक पैदल बातचीत', 'अतहीन-यात्रा', आदि ऐसी कवितायें हैं जिनमें कवि ने संघर्षशील आस्था को कलात्मक अभिव्यक्ति दी है। मणि के पास बातचीत की शैली है लेकिन कभी-कभी शिल्पगत चमत्कारों का मोह या कभी-कभी सपाटबयानी या फतवेबाजी या मसीहाई मुद्रा उनके समूचे निर्माण को बिखराव की स्थिति में पहुंचा देती है। वैसे अन्य संकलनों की अपेक्षा इस संकलन की कविताओं में गठन और अन्विति अपेक्षाकृत अधिक है। इनमें भयावह और क्रूर स्थितियों की गिरफ्त से मुक्ति का रास्ता खोजते व्यक्ति के आत्म संघर्ष का चित्रण है।

प्रगतिशील काव्य-चेतना के संदर्भ में डॉ. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय की चर्च पूर्व में हम कर चुके हैं। प्रो. ऋतुराज ने उन्हें 'घड़ीसाज दिल, जिसे समय ठी करने की जिद है' कह कर सम्बोधित किया है। 'कबन्ध' की कविताओं में किस पूर्व या वर्तमान काव्य रूप का अनुकरण नहीं है अतः इन कविताओं को प्रचलि काव्य-रूप से कुछ भिन्न स्तर का कहा जा सकता है। कवि की लोकाभिमुखत उनके काव्य-रूप को आंचलिकता के सहज और प्रभावशाली मुहावरे से सत्तिक कर वैशिष्ट्य प्रदान करती है। कवि ने लिखा भी है—"लिखते समय मेरे अन्तर्मन में बसी हुई मेरे अंचल की जनभाषा स्वतः मेरी बौद्धिक संरचनाओं में इस तरह घु बैठती है कि मैं स्वयं चकित रह जाता हूं।" इस प्रकार कवि ने अपने अंचल इटावा के सामान्य जीवन-सौन्दर्य, बिम्ब, मिथक और मुहावरेदार भाषा-विन्यासों का प्रयोग कर भाषा में विलक्षण प्रभाव उत्पन्न किया है। इनकी लम्बी कवितायें वक्तव्यबाजी से मुक्त नहीं रह सकी हैं। शुद्ध संस्कृतनिष्ठ हिन्दी बोलते-बोलते वे 'भ्रमरगीत' में रोशन, खुशहल, तबस्सुम और शीशमहल पिरो जाते हैं तो लगता है कि यह भाषा कवि के परिवेश की भाषा है और उपाध्याय इसके प्रयोग में निष्णात हैं। उपाध्याय चिंतक-आलोचक भी हैं, मार्क्सवादी आलोचकों में उनका प्रमुख स्थान है और इसी-लिये उनकी कविता हमारे अपने समय के अनेक अन्तर्विरोधों और संघर्षों को सहज भाव से प्रेषित करती है। राजस्थान के समकालीन हिन्दी कवियों में उपाध्याय की 'मूल्यबोध' की दृष्टि सबसे प्रखर है। कहीं-कहीं तो वे समय की विसंगतियों पर चोट करते समय घनघोर उग्रवादी की तरह प्रतीत होने लगते हैं। वे 'विस्फोट' के कवि हैं और उनका काव्य-फलक समय के विस्तृत आयामों तक फैला है। वस्तुतः उपाध्याय ने प्रगतिवादी-जनवादी-चेतना को ही नये प्रतीकों-बिम्बों के माध्यम से बौद्धिक स्तर पर नये काव्य-शिल्प को तराशा है। ऋतुराज के शब्दों में—"उपाध्याय मानवीय परिस्थिति के भाष्याकार हैं। उनकी कविता घिरे हुए आदमी की दहशत नहीं, वहशत है यानि उसमें विद्रोह का स्वर बहुत मुखर हुआ है। व्यंग्य की पैनी धार उसमें भले ही न हो लेकिन घर्षण और विस्फोट सर्वत्र है। वे भाषा से साता पैदा करते हैं। कभी-कभी वे अपनी काव्य-वस्तु का संगठन अत्यन्त विल-क्षण शब्द-गुम्फन से करते हैं जैसे किसी लरदरी ऊबड़खाबड़ चट्टान पर प्रागैति-हासिक भित्ति चित्र उकेरे गये हैं।"

नागपुर तथा मारीशस विश्व हिन्दी सम्मेलन के 'भारतेन्दु-सम्मान' से सम्मानित डॉ. रामसिंह नये भाव-बोध और भाषा-शिल्प की चर्चित कवियों में से हैं। 'समुद्र मंथन' उनकी एक भिन्न काव्यकृति है और साहित्यिक-पत्रिकाओं में प्रकाशित अनेक कविताओं के अतिरिक्त उनकी कुछ कविता 'राजस्थान के कवि-2', 'प्रतिमा' आदि में संकलित हैं। इन कविताओं के आधार पर कहा जा सकता है कि

उनकी रचनादृष्टि, अनुभव संसार और शिल्प-विधान समकालीन काव्य-लेखन की स्वस्थ भाव-भूमि पर विचरण करती है।

रमाजी की प्रवृत्ति प्रारम्भ से ही प्रकृति और मानवीय सम्बन्धों की रागात्मक अभिव्यक्ति की ओर रही है। 'समुद्र फेन' में तथा उनकी अद्यतन कविताओं में यही प्रवृत्ति विद्यमान है और यह क्रमश सूक्ष्म और प्रौढ़ होती है। प्रकृति से कवयित्री का सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ट और मधुर है। भोर, सुबह, किरन, धूप, दोपहर, साझ, ओस, पुष्प, विहग निर्झर, रेत, कुहासा, धुन्ध आदि कवियत्री के प्रिय काव्योपकरण हैं।

रमाजी का शिल्प-संस्कार भी 'समुद्र फेन' से लेकर अद्यतन कविताओं तक बुनियादी तौर पर समानता लिये हुए हैं लेकिन क्रमशः सूक्ष्मता और कलात्मकता के नवीन सोपान की ओर अग्रसर है। बिम्बात्मकता और सहजता उनके काव्य में सर्वत्र हैं। एक उदाहरण दृष्टव्य है—

नियति की बीन धरे ओठों पर
समय का सपेरा यह
कैसी धुन बजाता है
फूंकता है प्राणवायु रंध्रों में
अपने सिद्ध कौशल से
स्वरों को उठाता गिराता है।

रचनाओं का परिवेश सीमित है—यह उनकी सीमा भी है और उपलब्धि भी। लगभग व्यापक परिवेश के ग्रहण के लिये अपेक्षित बोल्डनेस और आधुनिकता, कवयित्री की परम्पराबद्ध मूल प्रवृत्ति से भिन्न है। गीत, मुक्तक, कविता सभी शैलियों के माध्यम से भी नई अभिव्यक्ति उन्हें प्रकृति प्रेरणा, मनस्विता और प्रगतिवादी चिन्तन से जोड़ती है। उनकी रचनाओं की विशिष्टता यह भी है कि उनके शब्दों के घटाटोप में भावों की बिजुरी खोई नहीं है बल्कि साफ सुथरे, निखरे आकाश की किसी तरह संध्या में भावों की हीरक कणिकाएँ नक्षत्रों की तरह जड़ दी गई हैं। सहज सलोना 'गमुस्केन' की विशिष्टता है। बाद की कविताओं में 'दो पहने राग', 'बीज की आकांक्षा' और सच्चा हो हुआ' का 'स्व' एक 'विराट स्वर' बना है और यही शायद उनकी कविता के विकास की सही दिशा है।

नई कविता और नये भावबोध में स्थापित हस्ताक्षरों में प्रो विजेन्द्र की अपनी अलग पहचान बनी है। शोषित वर्ग का पक्षधर उनका कवि-मन विकसित सौन्दर्यबोध की सृष्टि करता है। नई कविता के प्रतिनिधि हस्ताक्षर होने पर भी वे रूपवादी नहीं है और प्रगतिशील चेतना के पुरोधा होते हुए भी रचना की रचनाशीलता को 'संघर्ष-कीर्तन' के स्तर पर नहीं उतरने देते। विजेन्द्र की कविता इन दोनों आत्यन्तिक छोरों से बच कर चली है इसी कारण उनकी कविता कलावादी रुझानों और यथार्थ के नाम पर होने वाले 'भोंडेपन' और सपाटबयानी से काफी ऊपर उठी हुई है। अपनी पहली कृति 'त्रास' में वे अज्ञेय से प्रभावित लगते हैं लेकिन बाद की रचनाओं पर कवि त्रिलोचन का प्रभाव और व्यक्तिपरकता से नमस्कार की वृत्ति देखने को मिलती है। 'ये आकृतियां तुम्हारी', 'चैत की लाल टहनी', 'जन-शक्ति', 'उठे गूमड़े नीले' आदि इनकी अन्य चर्चित काव्यकृतियां हैं जिनमें वस्तु और रूप दोनों का परिवर्तित तेवर है। प्रकृति, धरती और किसान-जीवन से उन्होंने अपने काव्य का कथ्य जुटाया है। उन्होंने एक स्थान पर लिखा है—'रचना केवल विचार नहीं देती बल्कि वह मूल्यों का सृजन कर एक विशिष्ट सौन्दर्य बोध भी देती है।'

जनवादी भाषा-संरचना, विशिष्ट विश्व-दृष्टि तथा प्रखर भावबोध से विजेन्द्र के कृतित्व को साठोत्तरी नई कविता में पर्याप्त सम्मान मिला है। मार्क्सवादी सौन्दर्य चेतना से प्रेरित होते हुए भी विजेन्द्र ने कलात्मक-रूप की अवहेलना नहीं की है। प्रो. माधव हाडा के शब्दों में—विजेन्द्र शुद्ध रूप से सजग होकर वस्तुगत सदर्भों के भीतर से कविता को चार्ज करते हैं अत. उनकी कवितायें प्रगतिवाद की राजनीतिक कविता के उन सभी ह्रासशील संदर्भों से मुक्त हैं जो किसी दर्शन विशेष के मन्द अनुवाद से उत्पन्न होते हैं। विजेन्द्र की कविताओं का शब्द-

विधान संत्रस्त और भयभीत मानवीय नियति से साक्षात्कार की प्रतिश्रुति के ब
जूद भाषा के स्तर पर अभिजात्य और शालीनता से युक्त है। इसी कारण क
की प्रखरता और दाहकता की तुलना में उनके भाषा-शिल्प पर 'सर्द और ठण्डे
का आरोप भी लगता है।

हिन्दी कविता के क्षितिज पर एक नया धूमकेतु बहुत तेजी से उभरा ह
थोड़े ही समय में बहुचर्चित होकर उसने अपनी पहचान स्थापित कर ली है, न
ऋतुराज, व्यवसाय से प्राध्यापक और रुझान से मूलत कवि, चित्रकार, आका
तेवर और धारदार भाषा-शिल्प ने उसके काव्य को विशिष्ट भंगिमा दी है, ऋतुर
की काव्य-चेतना का जननिष्ठ होना, उनकी सृजन प्रक्रिया की संघर्षशीलता
बहु आयामी विस्तार देता है। उनकी चर्चित काव्यकृतियां हैं—'मैं आंगिर
'एक मरणधर्मा और अन्य,' 'पुल पर पानी', 'अबेकस', 'नहीं प्रबोध चन्द्रोदय
ऋतुराजकृत 'मैं आंगिरस' की कविताओं में आत्मा की निस्सगता का रूमानी
है, कथ्य और शिल्प दोनों दृष्टियों से कवि में नये भाव-बोध और शिल्प के द
होते हैं। कथ्य के रूप में उसने आधुनिक युग की विसंगति और जीवन को या
दी है। शिल्प में कुछ-कुछ अनगढ़ से लगने वाले सार्थक प्रयोग भी किये गये
इनमें 'समाधि-लेख' जैसी सन्तापग्रस्त और 'बून्दों में परीक्षायें' जैसी सपाटबया
कवितायें भी हैं और 'नचिकेता', 'महानगर', 'स्वस्थ पीढ़ी' 'बसन्त', 'युद्ध' ज
सशक्त कवितायें भी हैं। 'बसन्त' की यह पंक्ति—"एक झुर्री जो दर्पण में/अचा
दिखाई दे जाती है/इसी तरह बसन्त आता है/—एक अच्छा बिम्ब प्रस्तुत कर
है, 'युद्ध' में कवि थोथी भावुकता के साथ कतरा कर निकल गया है—

"उसने अपने जख्मी हाथों से/हमारी किताबें छीन ली/हमारी रसोई की आग क
बर्फ के पहाड़ में ढक दिया/उसने हमारे पांवों में/लोहे की नालें लगा दी/हम
हाथों में संगीन थमा दी/उसने हमारे दिमाग/अखबारों की खबरों से भर दि
और हमारे रेडियो भौंकने लगे/हमारे गीतों का कंठ रुंध गया।'

'एक मरण धर्मा और अन्य' में किसी एक केन्द्रीयभाव को नहीं ढूंढा जा सकत
अधिकांश कविताओं में खण्डित व्यक्तित्व का बिखराव है, लेकिन गहरी सांकेतिक
भी है। वे स्पष्टतः कुछ नहीं कहतीं पर उनकी समग्रता, निरर्थकता में सार्थक
का सा अहसास कराती है, सूक्ष्म से सूक्ष्म को पकड़ने की ललक और शब्दों
बांधने की सामर्थ्य, ऋतुराज की इन कविताओं में है—"जहां आवाज होती
चिड़ियों की/पूंछ की तरह जंगल उठ जाता है/इसलिये धूप चुपचाप चली जा

'पुल पर पानी' की कविताओं का अनुभव संसार मात्र के मानवीय संदर्भ और जिन्दगी के सरोकारों से जुड़ा हुआ है। "कवि की प्रतिपक्षीय संवेदना से भरपूर यह काव्य संकलन समाज की बहुस्तरीय जटिलताओं को उघाड़ता हुआ पाठक को उस बिन्दु तक ले जाने में समर्थ है, जहाँ उसे न सिर्फ व्यवस्था बल्कि स्वयं अपने प्रति भी गम्भीर होना होगा।" वस्तुतः ऋतुराज की यह काव्यकृति पूंजीवादी शोषण पर कविता के धारदार हथियार से, पूरी कलात्मकता का निर्वाह करती, प्रहार करती है और सत्ता-प्रतिष्ठानों के खोखले चरित्र को नंगा करती है। 'अबेकस' की कविताओं को समझने के लिये पुस्तक के फ्लैप पर दिया अशोक वाजपेयी का अभिमत दृष्टव्य है—"ऋतुराज की कविता, गहन कलासंयम, सुझाव कौशल और आकारिक चेतना के लिये विख्यात है। भाषा के प्रति निरन्तर सावधानता और कविता की सामाजिक जिम्मेदारी के बीच ऋतुराज के यहाँ कोई फांक नहीं है।"

ऋतुराज में भाषा का उन्माद मात्र नहीं है किन्तु भावों और विचारों की अभिव्यक्ति उनमें राजस्थान के हिन्दी कवियों में सबसे अधिक है। डॉ. हरिचरण शर्मा के इस कथन में वजन है कि "ऋतुराज की कविता में ऊष्मा है, संवेदना में मार्मिकता है और परिवेश के प्रति सजग दृष्टि है। उनके पास एक दृष्टि है—जीवन को परखने वाली दृष्टि—इसी से उनकी अधिकांश कविताओं में विचारों के बवंडर, तनाव और एकान्त की पीड़ाबोध के चित्र बड़े सुथरे और स्पष्ट हैं ..... भाषा में कसाव तथा संयोजन है। उनकी भाषा सधी हुई, शिल्पों से बची और [illegible] की [illegible] से अधिक जुड़ी हुई है।" वस्तुतः ऋतुराज के काव्य में शिल्प बहुत [illegible] है। वस्तुओं के चयन और नवीन दृष्टि से ऋतुराज की काव्यभाषा अनुभूतियों से [illegible] युक्त, नवीन और मौलिक है। उनकी विचारपूर्ण कविताओं में भी कला-कृतियों के संस्कार का [illegible] है क्योंकि कवि मानता है कि "विचारधारा को बिना [illegible] के लिए कोई कविता प्रभाव नहीं डाला जा सकता।"

[illegible]

नन्दकिशोर के लिये कविता "प्रत्येक कलारूप, सर्वप्रथम सत् को जानने की एक विशिष्ट प्रक्रिया है। जब शब्द के माध्यम से सत्य को जानने की बात करता हूं तो इस 'जानने' में, कहना भी शामिल है और सुनना भी। अतः कविता एक ऐसी दोहरी प्रक्रिया है जिसमें कहने वाला व सुनने वाला, दोनों मिल कर जानने वाला होते हैं। इस प्रकार कविता आत्म-श्रवण भी है और आत्मनिवेदन भी। इस श्रवण-निवेदन की प्रक्रिया ही में सत्य उद्घाटित होता है।" (चौथा सप्तक से)

नन्दकिशोर, मुक्तिबोध की ही तरह कविता को "वैविध्यमय जीवन के प्रति आत्मचेतस व्यक्ति की संवेदनात्मक प्रतिक्रिया" मानते हैं। कविता के प्रति ऐसी खुली और निःसंग दृष्टि के कारण उनकी कविताओं में पर्याप्त वैविध्य है। आधुनिकता, प्यार, दर्शन और जिन्दगी का बहुमुखी अनुभूतियों का विविधयामी विन्यास, भावार्थ की कविताओं को विशिष्ट स्तर देता है। अपने समकालीन और सहयात्री कवियों से उनका स्वना सकट भिन्न और विशिष्ट किस्म का है जिसका आधार वह संवेदनशील अनुभूति है जो उनकी कविताओं को 'शुद्ध कविता' की श्रेणी में रखती है।

नन्दकिशोर की कवितायें इस शताब्दी के सांस्कृतिक विघटन और नवीन सांस्कृतिक मूल्यों के अन्वेषण के मानवीय संघर्ष को चित्रित करती है। व्यक्ति और परिवेश के सम्बन्धों में आ गये असंतुलन, तनाव और संघर्ष का कारण भी नन्दकिशोर व्यापक सांस्कृतिक अवमूल्यन को मानते हैं। सांस्कृतिक विघटन की अनेक प्रवृत्तियां उनकी कविताओं में सघनता से व्यक्त हुई है—"व्यर्थ हो चुके हैं/रोगन/उतरी मालिस की तरह/जीवन के सभी प्रतिमान पर्यायवाची होते जा रहे हैं/जीना और अखबार पढ़ना/पड़ौस की किसी लड़की/या लैंडी टाइपिस्ट का मुस्करा कर बात कर लेना ......।"

व्यापक सांस्कृतिक अवमूल्यन और जीवन में बढ़ती यांत्रिकता का कवि निकट से साक्षात्कार करता है और इससे मुक्ति की आकांक्षा और छटपटाहट को भी वाणी देता है। परिवेशगत सभी दबावों से मुक्त होकर वह नितान्त अपनी जिन्दगी जीना चाहता है अतः उसका काव्यबोध स्थिति को 'शीर्षासन' कराने की भावना से अनुप्राणित है—"काश/शीर्षासन कर जाय यह स्थिति/और हम जियें/किसी एक्ट की धारा बन कर नहीं/कविता की तरह/कि हम/सुन्दर फ्रेम में मढ़ा/कमरा चित्र न होकर/भावोन्मेष के किसी क्षण में अंकित/टेढ़ी-मेढ़ी रेखा मात्र हों।"

परिवेश और विविध जीवन संदर्भों के प्रति कवि के काव्यबोध का एक अन्य आयाम उनकी प्रणय-कविताओं में मिलता है जिनमें अन्तर्संबन्धों और सूक्ष्म

संदेशों के साथ-साथ देशानुभूतियों का सन्निवेश भी है। पिछले दो-चार वर्षों में संवर उनकी कविताओं में रेत के प्रति जो संवेदनशीलता उभरी है उसने उनके शब्द-बोध में एक और नये, परंपरागत पर तब अछूते, आयाम से परिचय कराया है। उनकी मानसिक संरचना बिम्ब बहुल है। एक दूसरे पर उठे-गिरे बिम्बों का सम्मिलित विधान आचार्य की भाषा को, प्राणवंत बनाता है। उनकी मंजिल कविताएं, भाव-सान्द्रता और शिल्प-सौन्दर्य के कारण अपनी अलग पहचान स्थापित कराती हैं। 'चौथा सप्तक' में इस कवि को सम्मिलित किया जाना, उनके सृजन की उत्कृष्टता और श्रेष्ठ समागम क्षमता को ही उद्घाटित करता है। एक समालोचक ने उनकी कविता को 'अध्यात्म, प्रेम और प्रकृति' की कविता कहा है। शिल्पगत शब्द-साधना, मितकथन, सांकेतिकता तथा भाषागत चारुता उनकी कविता को विशिष्टता देते हैं। वे गैर बाजारी रचना दृष्टि के कवि हैं और अज्ञेय की सौन्दर्य-धारणाओं से प्रभावित हैं। वैचारिक सरलीकरण और सपाटबयानी उनकी कविता में नहीं है। उनकी कविता नव-आध्यात्मिकता से प्रतिकूल होती हुई उन सभी मानवेतर-लोकोत्तर शक्तियों को दार्शनिक धरातल पर चुनौती देती है जो मानवीय स्वाधीनता, समानता और गरिमा को क्षीण कर उसकी अपनी अर्थवत्ता, शक्ति और सृजन-सामर्थ्य को धूमिल और कुंठित करती है।

'वह एक समुद्र था' में आचार्य ने मरुभूमि के प्रति मन के स्वाभाविक अनुराग को व्यंजित किया है। मरुभूमि केवल रेत-कणों का विशाल समूह नहीं अपितु उसके निकट एक जीवन्त मानवी-सत्ता है। मानवीय भावोद्वेलन और राग-विराग से संपृक्त मरुभूमि की व्यथा और जिजीविषा को प्रतीकात्मक अर्थवत्ता देकर कवि ने उसके बहुआयामी रूप को व्यक्त किया है। काव्य-भाषा की अर्थवत्ता के प्रति भी वे बहुत सचेत हैं और यन्त्रीकरण के इस युग मे भाषा के निरन्तर अर्थहीन होते जाने से व्यथित भी हैं —

"मेरी सारी पीड़ा को/चूस कर भी शब्द/किसी कौने से गीले नहीं होते/कि/थोड़ी देर के लिये ही सही/एक घरोंदा ही बना लू'।"

अप्रस्तुतो का चयन श्री आचार्य की सौन्दर्य दृष्टि बहुत ही मनोयोग, धैर्य और कौशल से करती है। एक दृश्य-बिम्ब—

> मुस्कान सी हल्की
> आख सी खुली
> खुले अंग सी चौंध
> आलिंगन सी घनी
> हरियाली के भी कई रंग है।

प्रगतिशीलता, स्वस्थ मानव मूल्य और साहित्यिक गरिमा के पक्षधर, बीकानेर के रामदेव आचार्य राजस्थान के लेखकों में कवि-समीक्षक के रूप मे जाने जाते हैं। उनका प्रथम प्रकाशित काव्य संग्रह 'मक्षरों का विद्रोह', उनकी रचनात्मक क्षमताओं के प्रति आश्वस्त करता है। कृति के फ्लैप पर दी गई टिप्पणी से स्पष्ट है कि कवि किसी आग्रह विशेष से बंधा नहीं है, उसकी काव्य संवेदना किसी विचारधारा की निर्धारित सामग्री नहीं है। नन्द चतुर्वेदी के शब्दों में "उनकी कविताएं खुली हुई नावों की तरह हैं जो सब दिशाओं में संतरण करती हैं।" 'रेगिस्तान से महानगर तक' उनका अपेक्षाकृत अधिक प्रौढ काव्य-संकलन है।

'मक्षरों का विद्रोह' की कविताओं का सबसे प्रखर और केन्द्रीय स्वर सामयिक परिवेश के प्रति आक्रोश का है जो कभी व्यंग्य के ढांचे मे ढला होता है और कभी एकदम सपाट, ग्रन-तराशा सा—"मां रे मीटू जीव/यह नहीं भाग्य का दान/यह प्रजातन्त्र का ज्ञान/कि घोड़े ढोयें बोझ/गधे चबायें पान।" इसी तरह की अन्य अनेक कविताओं में भी परिवेश के प्रति नाराजगी और आक्रोश की मुद्रा को अभिव्यक्त करने के लिए अपेक्षित कलात्मकता का अभाव है इसीलिये व्यवस्था की क्रूरता और मानवता की विकलांगता का अहसास होने हुए भी अभिव्यक्ति मे कभी-कभी आचार्य की कवितायें वाछित प्रभाव से वंचित रह जाती हैं। कहीं-कहीं काव्यात्मकता का अभाव उन्हें वक्तव्य या विचार के समीप ले आता है।

'राजस्थान के कवि भाग–2' (स –योगेन्द्र किसलय) 'त्रयी' (स –जगदीश गुप्त) और पत्र-पत्रिकाओं मे इन दिनों प्रकाशित कविताओं तथा 'रेगिस्तान से महानगर' तक के आधार पर कहा जा सकता है कि आचार्य ने कथ्य और शिल्प, दोनों ही धरातलो पर अपनी सीमाओं का अतिक्रमण किया है। इन कविताओं में प्रौढ़ और विविधायामी काव्य दृष्टि प्रतिफलित है—परिवेश की भयावहता और विकलांग मानवता की पीड़ा को अधिक मुखर और कलात्मक अभिव्यक्ति मिली है। अनुभवों की परत-दर-परत जटिलता के अनुरूप उनकी भाषा की बनावट भी अधिक संश्लिष्ट होती गई है—

'बर्बरों ने उस दिव्य औरत को पेड़ से बांध रखा था/उस रूपवती आदि-शक्ति के हाथ-पांव/रस्सियों से जकड़े थे/उसके परिधान तार-तार जर्जर कर दिये गये थे/मर्यादा-ज्योति की आबरू/लूटने का/हरसम्भव प्रयत्न किया गया था।'

'रेगिस्तान से महानगर' तक शीर्षक लम्बी कविता–एक यात्रा वृत्तान्त है—बीकानेर से बम्बई तक का। महानगरीय संत्रास, एकरसता से उत्पन्न बुझा-बुझा एकाकीपन और भागमभाग का संवेदन-शून्य जीवन-क्रम, कवि को विरक्ति की सीमा तक ले जाता है। इस प्रकार से यह यात्रा, जीवन परिवेश से टूटकर भागती 'मुर्दा

जिन्दगी' के उद्देश्यहीन सफर का फासला तय करती है। कविता अपनी सहजता से शब्द चित्र उकेरती चली जाती है और साथ-साथ प्रस्तुत करती है। रेगिस्तान की रंगीन फिजा और महानगर की मशीनी-दमघोटू संवेदन-शून्य जिन्दगी का तुलनात्मक विश्लेषण, लेकिन इस ऊब और घुटन से उत्पन्न जो तल्खी होनी चाहिये, उसका धारदार पैनापन आचार्य के पास नहीं है। वह तो केवल कैनवास पर दृश्य के बाद दृश्य, चित्र के बाद चित्र अंकित करता चलता है जीवन सत्रास, आक्रोश, व्यवस्था व परिवेश की क्रूरता के प्रति कवि की सजगता अनेक स्थलो पर तीव्रता से उभरी है।

"महानगर/तेरी भीड में भागती/मुर्दा जिन्दगी/किस सफर का फासला/तय कर रही है/समुद्र मे उठता गिरता ज्वार/तुम्हारी जीवन पद्धति का/क्या सार्थक रूपायन है ?"

कलकत्ता प्रवासी श्री हर्ष महानगरीय-बोध-सम्पन्न कवि है। महानगर की पीडायें शायद अधिक मुखर होती हैं इसलिये वे अनुभूति को गहराई तक झकझोरती हैं। इसी अनुभूति की इन्सान को बेहतरी के लिये एक विकलता, कवि हर्ष की कविता का मुख्य कथ्य है। जीवन की विद्रूपता, शोषण, गैर बराबरी, नाइसाफी, फरेब और मक्कारी से घिरी जिन्दगी जो भीतर से खोखला कर रही है—उन सब पर हर्ष ने मारक प्रहार किया। एक सत्य समय का होता है, एक सत्य जीवन का होता है। जो रचनाकार इन दोनो को समझ कर इनका विवेक-सम्पन्न उपयोग करता है, वह दीर्घजीवी होता है। प्रसन्नता है कि श्री हर्ष ऐसा करते है किन्तु अधिक लम्बे समय तक वह ऐसा नहीं कर पाते। जीवन का सत्य उनकी पकड से छूट जाता है—समय के सत्य की झंझा शायद ऐसा कराती है। सामयिक-सत्य का तेवर हर्षकृत 'समय से पहले' तथा 'राजा की सवारी' में बखूबी देखा जा सकता है।

हर्ष राजस्थान के उन प्रवासी कवियों मे से हैं जिन्होंने प्रदेश की काव्य-सम्पदा को रचनात्मक योग से समृद्ध किया है। उनकी दृष्टि में 'कविता संवेदन रूप से समय की विसगतियो, द्वन्दों, तनावों और इच्छाओ, आकांक्षाओ को रूपायित करने का हथियार है।' हर्ष की कवितायें अपना कथ्य, समकालीन राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक संदर्भों से ग्रहण करती है। स्वातन्त्र्योत्तर भारतीय परिवेश की राजनीतिक, सामाजिक विसगतियों के चित्र उनकी कविताओं में बार-बार आए हैं। सभी स्तरों पर हुए इस मोहभंग को भी हर्ष अत्यन्त कौशल से तराशते हैं। उनकी कविता समय से जूझते हुए आदमी की कविता है। कवि समय की विसंगतियों, विषमताओं, द्वन्दों, तनावों और इच्छाओं–आकांक्षाओं को रेखांकित करता है—पूरे संकल्प के साथ।

समसामयिक परिवेश की भयावहता और यांत्रिकता से क्रमशः समाप्त होती मानवीय अर्थवत्ता की सुरक्षा के लिये कवि की चिंता इन शब्दों में व्यक्त हुई है—

> मेरे हाथ पांव के हिलने की आशंका पर
> ठोक दी जायेंगी कीलें/और मैं/ईसा पूर्व 73 वर्ष रोम के/
> राजमार्ग पर झूलती/गुलाम लाशों में से/एक लाश बन
> जाऊंगा/जिसकी दुर्गन्ध परेशान करेगी/सारे मौहल्ले को।
> किसी ठण्डे कमरे की सलीब पर/लटकने से पहले/मुझे
> अपनी घड़ी ठीक कर लेनी होगी।'

साठोत्तरी कविता के अन्य कवियों के समान कवि भाषा के सम्बन्ध में भी अत्यन्त सजग और संवेदनशील है। परिवेश की अवसादमयता, भयावहता को अभिव्यक्त करने के लिये उसे भाषा का प्रचलित मुहावरा अपर्याप्त जान पड़ता है अतः कवि एक सर्वथा नयी ऊर्जा, आवेश-सम्पन्न भाषा खोजने की बेचैनी से अनुप्राणित है—

> तमाम शब्द/घिसे सिक्कों की तरह/हो गये हैं अब/और/भाषा असमर्थ/अभिव्यक्त करने आज के/प्रश्नों के उत्तर/हमेशा ही एक हैं/हर क्षण सघर्ष/घूम रहा है चक्राकार/भयावह सुरंगों में/दौड़ रहा है आदमी/खोजने भाषा/जो शब्द दे सके/आज को/बस/आज को ही।'

बीकानेर के योगेन्द्र 'किसलय' राजस्थान के नव-भावबोध का यधारा के प्रतिनिधि [illegible] नहीं, जिस पर [illegible] है और हर प्रकार की [illegible] कविता और रचना-दृष्टि के प्रति कवि का यह खुला दृष्टिकोण उसके काव्य को स्वस्थ धरातल देता है। 'और हम', 'समवेत संकलनों तथा पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कविताओं के आधार पर कहा जा सकता है कि किसलय ने आधुनिक भावबोध को गहराई से आत्मसात किया है और सदैव अपने को समकालीन सदर्भों से जोड़े रखा है। कवि के दोनों काव्य-संकलन नई कविता के दौर के काव्य-सकलन हैं। नई कविता की काव्य-प्रवृत्तियों का सघन विन्यास और प्रतिबद्धता का प्रगतिशील स्वर किसलय की काव्य-चेतना की सामाजिकता और दायित्वबोध को निरूपित करता है। द्वितीय महायुद्धोत्तर निरर्थकता-बोध के भाव ने व्यक्ति की समस्त यात्राओं पर प्रश्न-चिन्ह अंकित कर दिया था। कवि ने इसी भाव को व्यक्त करते हुए कहा है—

बहुत सोच विचार
सभी तरह से हताश
आज सोचता हूं
कि मेरे लिये कर्म के क्षेत्र में
कुछ भी शेष नहीं।

नया कविता में यथार्थ के चित्रण का आक्रोशी, अग्निधर्मी तेवर सन् '60 के बाद की कविताओं में उभरा है। किसलय का काव्य-बोध भी अस्वीकार, आक्रोश और असन्तोष की नवीन भावभूमि से सम्पृक्त है। उनकी अद्यतन कवितायें साठोत्तरी कविता की सभी मुख्य प्रवृत्तियों का समाहार अपने भीतर कर लेती हैं। साठोत्तरी कविता के अनुरूप ही किसलय में यथार्थ के प्रति विलक्षण तटस्थता और निर्ममता का भाव पाया है। उनकी अभिव्यक्ति अधिक संकेतात्मक, अधिक प्रतीकात्मक हो गई है—

कल बहुत पानी पड़ा था
लेकिन सारे समन्दर में
बचा खुचा रेत के अजगरी टीबों पर
वहां तुम्हारे और मेरे चिन्ह नहीं
केवल प्रलाप या निस्तब्धता है।

साठोत्तरी पीढ़ी के नव-बोध हस्ताक्षरों में जयपुर के वीर सक्सेना का नाम बड़े महत्व का है। वीर की प्रकाशित काव्यकृति है—'अयात्रा-सैंतीसवीं सुरंग तक'। उन्होंने परम्परागत और नये दोनों ही तरह के गीत लिखे हैं। पारम्परिक गीतों में छन्द-लय का पूर्ण निर्वाह है और नवगीतों में छंद कम लय अधिक है। पुराने गीतों में विषय भले ही प्रेम या तज्जन्य निराशा का हो, अभिव्यक्ति की ताजगी उन्हें भी नया अर्थ देती है। अपने नवगीतों में वीर ने युग की तिक्तता को शब्दबद्ध किया है। कवि को आज की भीड़ में भी अकेलापन महसूस होता है। 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' में प्रकाशित 'एकान्त के घने जंगल के चारगीत' शीर्षक से प्रकाशित गीतों में नया मुहावरा तो है ही, युग का सत्रास और पीड़ा, बेचैनी के साथ व्यक्त हुई है। सम्बन्धों और परिचयों को अजनबीपन, महानगरीय संत्रास, शब्दों की अर्थहीनता और इसी प्रकार के अन्य आधुनिक भावों को कवि ने सहज प्रस्तुति दी है। यह कवि का कौशल है कि जो भाव कविता में कटु बन जाता है, वही इनकी कलम से मधुर, स्वीकार्य रूप में निःसृत होता है। नयापन वीर के नवगीतों का प्राण है। 'अयात्रा—सैंतीसवीं सुरंग तक' में वीर अपने गीतकार के

घटना रगों वाले लबादे से बाहर एक निःसंग, निर्मम कवि के रूप मे आते हैं। इन सभी कविताओ मे आन्तरिक लय है और कवि ने आज के जटिल जीवन के विभिन्न संत्रासों को नये–नये आयामों से देखने का प्रयत्न किया है। कवि के पास युगीन तिक्तताओं को भेदने वाली निगाह और बांधने वाला शब्द भण्डार है। इस कृति की रचनाओ का मूल विचार-सूत्र कवि के शब्दो मे 'समय की ताजा दुर्घटनाओ मे है—

'शरीक होकर/कृशकाय लोगो की/पैदल यात्रा के साथ/प्रतिबद्ध चलना चाहता हूं।' यह सकल्प कवि को सामाजिक संदर्भों से जोड़ता है। 'शताब्दियों से अलग' कविता मे उस लघु-मानव की तलाश की छटपटाहट है जो 'नई कविता' की विशिष्ट भंगिमा रही है—

हर बार
मेरा पीछा करता हुआ समय
अकेला छूट जाता है
और अन्त मे उसे पता चलता है
वह दिशाहीन हो गया है।

'समय की दिशाहीनता' मे, 'मैं' यानी आदमी की तलाश अब विशिष्ट हो गई है इसी से वह स्वयं को शताब्दियों से अलग घोषित करता हुआ अपने व्यक्तित्व की विशिष्टता बताता है—

हो रहे हैं। उन्होंने अपने स्वर-वैशिष्ट्य और रचनात्मक उत्कर्ष से, अल्प समय में ही राजस्थान के नवलेखन में उल्लेखनीय स्थान बना लिया है। राष्ट्रीय स्तर की श्रेष्ठ साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं में कविताओं के प्रकाशन के अतिरिक्त इस युवा कवि की एक लम्बी कविता 'जारी इतिहास के विरुद्ध' तथा एक काव्य-सकलन 'घर-बाहर' प्रकाशित है।

'जारी इतिहास के विरुद्ध' में कवि का अनुभव ससार उनकी आयु से कहीं बड़ा है। उनमें कवि ने वर्तमान अराजक राजनीतिक व्यवस्था और दरिन्द्रा-संस्कृति को अनेक सघन, संश्लिष्ट बिम्बों, प्रतीकों और उपमाओं के माध्यम से चित्रित किया है। पेशे से राज्य सरकार के राजपत्रित अधिकारी (आर. ए. एस.) इस कवि में व्यवस्था के प्रति जो आक्रोश है वह उसकी लेखकीय ईमानदारी का सबसे बड़ा सबूत है। इस लम्बी कविता में कवि ने असामयिक परिवेश की भयानकता और क्रूरता को उसकी समस्त संरचनात्मक जटिलताओं के साथ मूर्त रूप दिया है। वर्तमान क्रूर व्यवस्था के तथाकथित प्रेम की साजिश को कवि ने 'संगीत के सम्मोहन' की संज्ञा देकर नंगा किया है। अफसर, बाबू, राजनीति, धर्म, संस्कृति आदि सभी की प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष साजिश में सलग्न शक्तियां कवि की पैनी दृष्टि और तीखे प्रहार से नहीं बच सकी हैं। परम्परा से बोझिल आहत भारतीय नारी का चित्रण, हेमन्त के शब्दों में देखिये—

> पैटीकोट
> धो रही है फूलपांव वाली
> साध्वी महिलायें।

हेमन्त के तेवर, आक्रोशी मुद्रा लिये हुए हैं, वह आक्रोश, संघर्ष और तीव्र घृणा को व्यक्त करने के लिए जिस भाषा-शिल्प का प्रयोग करता है उसमें बेचैनी, तनाव, कसमसाहट और कभी-कभी गाली-गलोज के साथ-साथ ऐसी परम्परा-विरुद्ध भाषा का प्रयोग भी है जिससे सम्पूर्ण कविता आवेश की ऊर्जा से अनुप्राणित दृष्टिगत होती है। इस लम्बी कविता में अनेक स्थलों पर हेमन्त की तल्खी, कवि धूमिल के पास में खड़ी होने की सामर्थ्य प्रदर्शित करती है।

हेमन्त, व्यक्तिगत जीवन में बड़े सुरुचि-सम्पन्न व्यक्ति हैं। संगीत और कला के प्रति प्रतिबद्ध उनका काव्य-संसार आधुनिक नागरिक व्यक्ति के आंतरिक अवसाद, आकांक्षा और व्यग्रता की सूक्ष्म और सांकेतिक कलापूर्ण अभिव्यक्ति है। हेमन्त का आधुनिक व्यक्ति के आंतरिक संसार से मात्र 'पोस्टरीय' स्तर पर ही सम्बद्ध नहीं ... जहां 'दूरियां छोटे-छोटे पौधों की तरह' भाषा के बीच उग आती हैं। वे आधु... ...ति को संवेदना के धरातल पर जीते हैं। परिवेश के प्रति संवेदनशील

आग की यह लपट/धधक रही है/यहां उन लोगों ने
एक नई लड़ाई की शुरूआत कर दी है।'

अम्बर के भागीरथ भार्गव की कविताएँ "जिस-तोड़ तनाव की कवितायें हैं। उनके विषय हैं बोझिल होती हवायें, अबन्द्ध होती शामें और विवेक तथा समझदारी का अभाव होता जाता भार।"

भागीरथ भार्गव 'कविता' जैसी स्वस्थ मानव मूल्यों की पक्षधर पत्रिका के महत्वी सम्पादकों में से हैं, व्यवसाय से अध्यापक और स्वभाव से फक्कड़ यायावरी के गुणों से युक्त भागीरथ भार्गव लेखन या व्यक्तिगत जिन्दगी में विवादास्पद न होते हुए भी निरन्तर चर्चा और विवाद का विषय बने रहते हैं। यह उनके लेखन और व्यक्तित्व के महत्व को रेखांकित करने वाली बात है कि अपेक्षाकृत कम लिखने के बावजूद जब भी आधुनिक भावबोध का जिक्र होता है या इस प्रांत के सामाजिक मूल्यों के प्रति प्रतिबद्ध रचनाकारों की चर्चा होती है, भागीरथ भार्गव किसी न किसी रूप में प्रासंगिक-अप्रासंगिक ढंग से चर्चित हो ही जाते हैं 'हथेलियों में ब्रह्माण्ड' और 'शाही सवारी' इनकी प्रकाशित काव्यकृतियां हैं।

अपनी प्रतिबद्ध जीवन दृष्टि और प्रगतिशील काव्य संवेदना का परिचय इन्होंने 'हथेलियों में ब्रह्माण्ड' में सकलित कविताओं में दिया है, कतिपय सीमाओं के बावजूद यह कृति कई धरातलों पर आश्वस्त करती है। अपने परिवेश के प्रति सजगता तथा अपनी पहचान स्थापित करने की व्यग्रता उनके काव्य में अनेक रूपों में व्यजित हुई है। व्यापक सामाजिक विकृतियां, राजनीतिक विसंगतियों और आर्थिक असमानताओं के समाहार के लिये कवि के पास प्रश्नाकुल छटपटाहट के साथ-साथ परिवेश को करीब से देखने और घेराव-मुक्त होकर कहने की ऊर्जा भी है जिसे कवि ने शनैः शनैः जुटाने की व्यग्रता व्यजित की है।

भागीरथ की कवितायें कभी-कभी इस बात का अहसास कराती हैं कि अस्तित्व-बोध ही उनकी रचनाधर्मिता का मूल स्वर है। तह-दर-तह अप्रामाणिक होते मानवीय अस्तित्व की यातना, कवि ने सवेदना के स्तर पर गहराई से अनुभव की है, कुछ रचनाओं की रसात्मकता गीति के स्तर की है और उनका बोध रोमान्टिक है-किन्तु यह बात केवल प्रारम्भिक रचनाओं पर लागू होती है। बाद का विकास गहरे सामाजिक बोध और भाषा-अभिजात्य से मुक्त खरदरे पैने शिल्पी की तराश लिये हैं। भागीरथ भार्गव किसी विशिष्ट विचारधारा में शिविरबद्ध चाहे न हो किन्तु वामपंथी रूझान उनकी कविता को जुझारू ऊर्जा देता है।

युवा कवि, कला समीक्षक और आधुनिक चित्रकार, जयपुर के हेमन्त शेष, अपनी गहरी अन्तर्दृष्टि और धारदार लेखन के कारण वे इन दिनों अधिक चर्चित

। और उपेक्षित युग सदर्भों को अभिनव दृष्टिबोध से परखा है। शब्दों को भी नई अर्थवत्ता, नया संदर्भ बोध देने की चेष्टा की है। बहिन छिलका उतारने का प्रयास किया है जिससे वे नवयुग के पण में समर्थ हो सके।" सुरेन्द्र की रचनाओं में नई कविता के ु का आभास मिलता है।

ुर के भगवतीलाल व्यास राजस्थान की नई हिन्दी कविता के उल्ले- चित काव्य हस्ताक्षर हैं। 'शताब्दी निरुत्तर है' तथा 'फुटपाथ पर ती है', उनके प्रकाशित काव्य सकलन हैं। उनका काव्यबोध प्रारम्भ लीन सदर्भों से सम्प्रक्त रहा है। भगवती व्यास का काव्य सदर्भ अपने विषाक्त और भयावह परिवेश है। शोषण, युद्धों, स्वार्थों से हताहत ताब्दी जिस हताशा, सत्रास, कुंठा, अजनबीपन और अपरिचय जैसी ल मानवीय प्रवृत्तियों से ग्रस्त है, उसे व्यास ने बखूबी उजागर किया है। कवितायें प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से विषाक्त और भयावह परिवेश की गुंज- उत्तरस्य व्यक्ति की यत्रणा को उजागर करती है। इस यातना को कवि कभी मक ढग से, कभी सीधी सपाटबयानी के माध्यम से व्यक्त करता है। कवि इ लम्बी कवितायें अधिक मन्तर्प्रथित हैं। उनमें अपेक्षित तनाव और मजी ल्प दृष्टि है। कवि का भाषा सस्कार एकदम नया और कभी-कभी इतना कि परिवेश से उसकी असलग्नता प्रतीत होने लगती है।

मेड़ता के डोडियाना ग्रामवासी कैलाश जोशी नई पीढ़ी के सशक्त काव्य क्षर हैं। 'अंजुरी भर वन', 'जग भारती', 'दीप से दीप जले', 'चेतन-अवचेतन' की प्रकाशित काव्यकृतियां हैं। इन कविताओं में एक युवा कवि का मिज़ाज क हुआ है। आरोपित बौद्धिकता के छद्म से मुक्त कवि का चिन्तन सहज, भाविक ढग से व्यक्त हुआ है। इनकी कवितायें आत्मीयता नई पीढ़ी के बदलते र को धारदार भाषा मे प्रस्तुत करती हैं। कवि की भाषा, अनुभवजन्य संस्कार जुड़ी है। यथार्थपरक उपमानो एव प्रतीको ने इनकी कविता को जीवंतता दी है। उदाहरण द्रष्टव्य है—

मन/शीशे सा टूटना/तन/पिघलती मोमबत्ती सा/जिन्दगी/दोनों से अलग/ राय का फाटक है/स्थिरता जिसका धर्म नहीं।

डॉ. सत्यनारायण व्यास के शब्दो मे—"कैलाश जोशी की कलम में एक ये हुए शिल्पी की सूमबूझ है। उनमें भावों, विचारों का एक व्याकुलता रहित शान्त समुद्र है, एक रागी मन का चिन्तन गर्भित प्रौढ़ता की ओर बढ़ता विविध द्धिक प्रयास, इन कविताओं मे झलकता है। जोशी के रचनालोक के तमाम

हेमन्त शेष के भीतर आधुनिक व्यक्ति रूप ग्रहण करता है। एक अवसादजन्य कारुण्य, हेमन्त की कविताओं की संरचना के तत्वों की तरह विन्यस्त है।
"तुम जल रही हो/फानूस की तरह/इस निस्तब्ध रात में/अन्धकार सम्बन्धों की दरार के भर गया है/वह नमक/जो तुम्हारे शब्दों से बनता है/डरे हुए बैंगनी होठों से टपकता है।" भाषा की दृष्टि से हेमन्त शेष, पर्याप्त मौलिक और नये हैं। शब्द और अर्थ के बदलते हुए रिश्तों की समकालीन पहचान, इनकी कविताओं को वैशिष्ट्य देती है। शेष की कविताओं में शब्द और रंग का पारस्परिक सहयोग और सामंजस्य, चित्रकला और कविता की बुनियादी समानताओं के नये आयाम उद्घाटित करता है। शब्दार्थ, शेष की कविताओं में कभी-कभी शब्द के रंगों में पिघल कर, फैल कर निकलता है और कभी-कभी रंगों की ध्वनि, शब्द से मंडित होती है।

अन्य कवि—

पिलानी के कृष्णबिहारी सहल की कृति 'अहं और आत्मबोध' में, कवि जो कुछ भोगता रहा और जो उसकी चेतना भिन्न-भिन्न स्तरों पर अनुभव करती रही, उसी को अभिव्यक्ति मिली है। सहल का काव्यबोध छायावादी या प्रगतिवादी काव्यधाराओं की अतिरंजना से मुक्त है तथा कथ्य और शिल्प दोनों ही स्तरों पर भावबोध के आधुनिक रूप से प्रभावित है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर नई कविता ने व्यक्ति को बाह्य प्रतिमानों से मुक्त कर, उसकी सम्पूर्णता में देखने का प्रयास किया है। सहल की कविता में इसका अच्छा विस्तार मिलता है। अपने अस्तित्व की चेतना कवि को क्रमशः सौन्दर्यविहीन और कुरूप होते संसार से साक्षात्कार की सामर्थ्य देती है। बेगानेपन और अजनबीपन का अहसास भी सहल की कविता में प्रखरता से व्यक्त हुआ है। भरतपुर के रमेश 'शील' राजस्थान के उन कवियों में से हैं जिन्होंने आधुनिक काव्यबोध में अभिव्यक्ति के माध्यम को तलाशा है। 'कविताएँ' उनकी प्रकाशित काव्यकृति है जिसमें नये काव्य-शिल्प और संवेदनाओं के अनूठे स्वर दिये हैं। इनकी रचनाएँ व्यापक अर्थबोध से जुड़ी हैं। प्रकृति चित्रण में अनुभूत शील की शिल्प योजना अनूठी है। एक उदाहरण—

"खिड़कियां द्वार खोलो/शैवाल की तरह/बरसता रही है/बाहर/भीतर

डॉ. प्रकाश आतुर

जन्म : 26 जून 1929 ई. बीकानेर.
शिक्षा : एम.ए. (हिन्दी) आगरा विश्वविद्यालय.
बी.टी. पंजाब विश्वविद्यालय
पी.एच.डी–उदयपुर विश्वविद्यालय.

राजस्थान का सुविदित कवि. काव्य में उत्साह एवं सामाजिक चैतन्य का स्वर सयोजक, प्रान्त के सभी काव्यान्दोलनों से सबद्ध, काव्य में प्रतिबद्धता का पोषक. विचारों से उग्र और व्यवहार में यारबाज. प्रजामण्डल आंदोलन के समय से काव्य सृजन. साहित्य अकादमी के आलोचना पुरस्कार से पुरस्कृत. राजस्थान साहित्य अकादमी के राज्य सरकार द्वारा मनोनीत अध्यक्ष. उदयपुर विश्वविद्यालय अकादमिक कौंसिल, बोर्ड ऑफ कन्ट्रोल तथा फैकल्टी की अनेक बार सदस्यता 'बिन्दु' त्रैमासिकी एवं प्रगति साप्ताहिक का वर्षों तक सम्पादन. आज-कल अकादमी की मासिक पत्रिका 'मधुमति' का सम्पादन केन्द्रीय रेल मत्रालय, संचार मत्रालय हिन्दी सलाहकार परिषद का सदस्य, उत्तर क्षेत्र सांस्कृतिक केन्द्र का सदस्य.

कृतियां : राजस्थान का आधुनिक हिन्दी काव्य, राजस्थान की हिन्दी कविता, राजस्थान की कला-संस्कृति और साहित्य, कटी जबान का देश, मैं युग चारण (काव्य) राजस्थान के आधुनिक हिन्दी काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियां.

संपादन : लेखनी के शस्त्र, घायल मुट्ठी का दर्द, पं. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी : व्यक्तित्व और कृतित्व, कवि कन्हैयालाल सेठिया और उनका काव्य, आधुनातन परिवेश और सृजन की समस्याएं, साहित्य के सामायिक प्रश्न, आचार्य शुक्ल